ISSN : 2321-3922
अप्रैल – 2019
BIHHIN05394
वर्ष – 4 अंक–16

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल–2019

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी
कुन्दन अमिताभ

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–4, अंक–16

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई – 2019 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
कुर्तीदेव 10 या / भारतीय फोन्ट 80

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

अनुक्रम

1	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
2	आलेख	लघु साहित्यिक पत्रिकाएँ: परंपरा, महत्त्व और सोच	डॉ. गिरिजाशंकर मोदी	06
3	कविता	कोहरे की बढ़ गई हैं टहनियाँ, सुर्ख लावा	गरिमा सक्सेना	07
4	आलेख	साहित्य–यात्रा : डॉ० गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र'	प्रकाश सूर्यवंशी	08
5	कविता	पुलवामा से बालकोट	सपना मंगलिक	09
6	समीक्षा	खाली हाथ कबीर : चंदन गंध की धूप	शिवानन्द सिह 'सहयोगी'	10
7	समीक्षा	बेवजह यूँ ही : एक नवीन दृष्टि	अरुण अर्णव खरे	12
8	समीक्षा	ख़्वाबों के पेड़ तले	कुलदीप शर्मा,	13
9	समीक्षा	कर्ण : मेरी दृष्टि में	शतदल मंजरी	15
10	समीक्षा	मानवीय मूल्यों का पैरोकार : सवाल सिर्फ शब्द नहीं	वरुण प्रभात	17
11	समीक्षा	कई–कई बार होता है प्रेम : कविता–संग्रह	अरुण शीतांश	19
12	कविता	ओ सरहद पर मिटनेवालो / इस युग की कहानी	महेन्द्र प्रसाद निशाकर, विश्वम्भर व्यग्र पांडेय	21
13	आलेख	अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) पर विशेषग़ज़लें	आकांक्षा यादव	22
14	कविता/ग़ज़लें	वर्षा गीत	चाँद मुंगेरी, ज्योत्सना अस्थाना	24
15	आलेख	विद्यापति के पदावली में सौंदर्य–बोध	डॉ. मौसम कुमार ठाकुर 'शिक्षक'	25
16	कविता	दूसरा गाँधी (कविता)	संतोष कुमार राय 'साँच'	27
17	कहानी	मेरी होली तो हो–ली	मनोरंजन सहाय सक्सेना	28
18	कविता	खिड़की और दरवाजे	पूनम शुक्ला	32
19	कहानी	सवाब	डॉ. आरके नीरद,	33
20	कहानी	मेहमान	डॉ. पिंकी कुमारी बागमार	34
21	कहानी	नाईन्टी नाइन नॉट आउट	डॉ. नलिनी श्रीवास्तव	36
22	कविता	अंधकार के न्यायालय में, कल हवा ने, मुखबरी	जगदीश पंकज	37
23	कहानी	भँवरजाल	**सुजाता कुमारी**	38
24	गजलें	गजलें	रथेन्द्र विष्णु 'नन्हें'	39
25	कहानी	एक उच्चके का रोमांच	सुशांत सुप्रिय	40
26	लघुकथा	इमदाद, दोस्त–दोस्त, बहू , पॉकेटमार	सत्य शुचि, एन.आर. श्याम	43
27	कविता	बुजुर्गों के बीच, अपराजिता, माँ , बचपन	डॉ. आशा सिंह सिकरवार, संजीव सलिल, प्रिया देवांगन 'प्रियू'	44
28	ग़ज़लें,	गजलें	दिनेश 'तपन'	45
29	कविता	मोक्ष, रिश्ते, छोटी–छोटी सी बात	नीना छिब्बर	46
30	लघुकथा	अंतिम यात्रा, टोंटीदार लोटा	जयकृष्ण कुमार, बी.डी. बजाज	47
31	आलेख	अंगिका परिशिष्ट (प्रतिवेदन)	दयानन्द जायसवाल	

बहे खून मेरा चमन के लिए

ये धरती माँ है मेरी ये अलग ऐलान लिख देना
मेरी इस ज़िंदगी पे इसके हैं ऐहसान लिख देना
ये किसका मकबरा है दुनियावाले जान जायेंगे
तू मेरी फक्र के पत्थर पे हिन्दुस्तान लिख देना
बहे खून मेरा चमन के लिए,
मेरी जान जाये वतन के लिए
मेरा दिल जिगर और मेरी जान भी
है कुर्बान कह दो चमन के लिए
भरत, राम की तरह कर लो मिलाप
होगी इतना करम संतन्ह के लिए
मेरी जान जाए वतन के लिए
जो शरहद पै मुझको शहादत मिले
ना मैं हुस्न की अंजुमन चाहता हूँ
ना मैं प्यारी–प्यारी दुलहन चाहता हूँ
ना मैं चाँद जैसा ललन चाहता हूँ
ना मैं रोशनी की किरण चाहता हूँ
न बस्ति न शेहरा न वन चाहता हूँ
ना मैं आलिशाने भवन चाहता हूँ
ना मैं पैसा कौड़ी न धन चाहता हूँ
ना हीरे न लाले चमन चाहता हूँ
न गुलशन न मेंहदी चमन चाहता हूँ
न कलियों का मैं बाँकपन चाहता हूँ
न गुल और न गुलवदन चाहता हूँ
खुदा मैं तो यही चमन चाहता हूँ
यह धरती गंगो चमन चाहता हूँ
मरुँ तो मैं खाके वतन चाहता हूँ
तिरंगे का हल्ला कफ़न चाहता हूँ
शरहद पे मुझको शहादत मिले
तिरंगा उढ़ाना कफन के लिए।

चाँद अफ़जल कादरी

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

मानव के मन में नई–नई जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती हैं। तर्कशील और विवेकसंगत होने के कारण मानव का स्वभाव नये–नये प्रयोगों द्वारा नये–नये तथ्यों को खोजने का रहा है। हर अन्वेषणों का मुख्य कारण मानव के जीवन को अधिक सुखद, सुंदर, सांस्कृतिक, उदात्त एवं विराट् बनाना रहा है। अन्वेषण की जन्मजात प्रवृत्ति के कारण ही आदिमयुग से वर्तमान युग तक की यात्रा पूर्ण हो पायी है। मनुष्य निरंतर विकास के सोपान पार कर यहाँ तक आ पहुँचा है। उसकी विकास यात्रा में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है।

किसी भी समाज और संस्कृति में जन्मे मनुष्य और समाज के विकास के लिए अन्वेषण मूलभूत आवश्यकता है और अनिवार्यता भी। कोई भी शोध संस्कृति के शाश्वत प्रतिमानों की पुष्टि करता हुआ उसे नवीन व्याख्या प्रदान करता है। साहित्य के मूल्यों, तथ्यों की खोज समाज और साहित्य को दृढ़ता प्रदान करता है, समाज में आए बदलाव और विवादों का समाधान प्रस्तुत करता है। मानें या न मानें, पर जानें कि साहित्य की हर क्षेत्र में अहम भूमिका रहती है; क्योंकि साहित्य जीवन और संस्कृति के प्रति पहला उत्तरदायी होता है। पचास–साठ वर्ष पूर्व भी अखबार और साहित्यिक पत्रिकाओं के सामने जो चुनौतियाँ और संघर्ष थे; आज के मुकाबले अधिक कठिन स्थितियाँ और खतरे विद्यमान थे; लेकिन तब चीजों को व्यवसायीकरण नहीं हुआ था, न बाजार हमारे ऊपर हावी था और न ही हमारे भीतर एक चालाक किस्म का इंसान बैठा था, जो साहित्य के पटल पर अपने को स्थापित करने के चक्कर में साहित्य को निरुद्देश्य बना देता था। आज भी आप और आपके साहित्य उससे अधिक ऊँचाई पर चढ़कर बोल सकते हैं, जब युग कि विसंगतियों को गहरायी से चेतना में उतारकर हमारा साहित्य एक हलचल पैदा कर दे तो । जब जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार, विद्रूपता और अन्याय से लड़ने को प्रेरित कर दे तो । जब मनुष्य को सच्चा इंसान बनाने की चाहत से सिर्फ सुधार नहीं, बदलाव के लिए प्रेरित कर दे तो । जीवन के चारों ओर फैले अंधकार की पीड़ा और आक्रोश को संयमपूर्वक अभिव्यक्त करे तो।

आज के इस दौर में इंसान मानवता को छोड़ भेदभाव के रास्ते पर निकल पड़ा है। कहीं इंसानियत पर धर्म की चोट पड़ती है, तो कहीं स्वार्थ की। लोग इंसानियत को छोड़कर अपने अंदर पल रहे वैर, नफरत, अविश्वास, उन्माद और भेदभाव के कारण अभिमान को प्राथमिकता दे रहे हैं, जिससे उसके भीतर की मानवता शनैः शनैः दम तोड़ रही है। आपने देख जम्मू–कश्मीर के पुलवामा जिले की आतंकी हमला जिसमें सीआरपीएफ के कितने जवान शहीद हो गये। जिस समय यह हमला हुआ, उस समय वहाँ के रिजर्व पुलिल बल के 2500 से अधिक 78 वाहनों के काफिले में जा रहे थे। इनमें से अधिकतर अपनी छुट्टियाँ बिताने के बाद अपने काम पर वापस आ रहे थे। रास्ते में ही अवंतिपोरा इलाके में लाटूमोड़ पर घात लगाकर हमला कर दिया गया। काफिला तड़के साढ़े तीन बजे चला था और माना जा रहा था कि इसे सूर्यास्त तक श्रीनगर पहुँचना था। खराब मौसम के कारण लोगों की आवाजाही नहीं हो रही थी। उस सुनसान में किया गया कायरतापूर्ण इस आतंकी हमले ने देश को झकझोर दिया। मानवता शर्मसार हो गयी। उस पार्थिव देह को तिरंगे में लिपटे ताबूद में रखी गयी। अलग–अलग कोने से हुए शहीद जवानों को उनके घर पहुँचाये गये, जिनमें बुल्ढाना (महाराष्ट्र) से संजय राजपूत, ढोलपुर (राजस्थान) से भागीरथी सिंह, मोहम्मदपुर (जिला उधम सिंह, उत्तराखंड) से वीरेन्द्र सिंह, बहादुरपुर के चंदेली (उत्तरप्रदेश) से अवधेश कुमार यादव, आनंदपुर साहिब (पंजाब) से कुलविंदर सिंह, इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश) से महेश कुमार, उत्तरकाशी (उत्तराखंड) से मोहनलाल, उन्नाव (उत्तरप्रदेश) से, अजित कुमार आजाद, कांगड़ा (हिमाचलप्रदेश) से तिलकराज, कानपुर देहात (उत्तरप्रदेश) से श्याम बाबू, कोटा (राजस्थान) से हेमराज मीणा, गुमला (झारखंड) से विजय सोरेन, गुरुदासपुर (पंजाब) से मनिन्दर सिंह अंतरी, जगतसिंहपुर (ओड़िसा) से पी.के. साहू, जबलपुर (मध्यप्रदेश) से अश्विनी कुमार कोउची, जयपुर (राजस्थान) से रोहिताश लांबा, तरणतारण (पंजाब) से सुखविंदर सिंह, तुतीकोरीन (तमिलनाडू) से सुब्रमनीयनजी, तेरवा (कन्नौज) से प्रदीप कुमार, देवरिया (उत्तरप्रदेश) से विजय कुमार मौर्या, पटना (बिहार) से संजय कुमार सिन्हा, भागलपुर (बिहार) से रतन कुमार ठाकुर, प्रतापपुरा (उत्तरप्रदेश) से कौशल कुमार रावत, बक्सा (असम) से मानेसवर वासुमतारी, बलदाना (महाराष्ट्र) से राठौर नीतिन शिवाजी, भरतपुर (राजस्थान) से जींत राम, महाराजगंज (उत्तरप्रदेश) से पंकज कुमार त्रिपाठी, मांड्या (कर्नाटक) से गुरु एच0, मैनपुरी (उत्तरप्रदेश) से रामवकील, मोगा (पंजाब) से जयमलसिह, राजसामंद (राजस्थान) से नारायण लाल गुर्जर, राजौरी (जम्मू–कश्मीर) नासीर अहमद, बयानाड (केरल) से वसंथा कुमार वी.पी., बनारस (उ.प्र.) से रमेश यादव, शामली (उ.प्र.) से प्रदीप कुमार, अमित कुमार, हावड़ा (प.बं.) से बबलू संतरा। मैं इन शहीदों के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। कोई भी शब्द इस भीषण आतंकी हमले की निंदा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। चाहे जिस गतिविधि के चलते बालाकोट (पाकिस्तान) पर होनेवाले हमले से लोग मरे।

इस प्रकार की घटनाएँ किसी खास देश में नहीं, बल्कि पूरे विश्व में इन आततायियों का जहर फैलने से हो रहा है, जो मानव सभ्यता के लिए कलंक है। धर्म/मजहब के नाम पर युवाओं को बहकाकर उनमें नफरत पैदा करना, पैसों का लालच देना, सोशल मिडिया के माध्यम से आंतकी संदेश का आदान–प्रदान यह सब तेजी से फैल रहा है। अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, भारत आदि सभी देशों में यह अपनी जड़ें जमा रहा है। ये मानवता के दुश्मन हैं, जिनकी कारगुजारियों से न केवल देश और समाज को क्षति होती है, बल्कि घर के घर तबाह हो जाते हैं। मासूम बच्चे अनाथ हो जाते हैं और महिलाएँ विधवा हो जाती हैं। आज इसका स्वरूप इतना विकृत होता जा रहा है कि धीरे–धीरे पूरा विश्व इसका शिकार हो रहा है। अशांति और अस्थिरता का माहौल फैलता जा रहा है। बेगुनाह लोग आतंकियों की दरिंदगी का शिकार बन गये हैं। इससे किसी देश का भला नहीं हो सकता। ऐसे में दुनिया के साहित्यकार एवं पत्रकार की भूमिका बढ़ जाती है। उन्हें यह भूलना होगा 'रहिमन चुप हो बैठिये, देख दिनन के फेर।' उन्हें सोचना होगा 'कलम या कि तलवार'? इन्हें यह बताना होगा, एक युद्ध हमेशा दुःखों और नुकसानों में समाप्त होता है, पर लेखन मानवजाति के लिए एक उपहार है, क्योंकि कलम से किया गया, छोटा–सा शांतिपूर्ण–कार्य भी तलवार से की गई हिंसा के मुकाबले बड़ा प्रभाव डाल सकता है। साधारण–से साधारण शब्दों के माध्यम से जो कुछ भी कह सकते हैं, वह हिंसा के माध्यम से कभी नहीं बोला जा सकता है। लेखन लोगों को सामाजिक या राष्ट्रीय बुराई के खिलाफ खड़ा कर सकता है। दुनियाभर के साहित्यकारों व पत्रकारों में जो ज्ञान का अपार भंडार सुरक्षित है; समय आ गया है, वह कलम के चमत्कार से ज्ञान दीप जलाकर दुनिया में उजाला फैला दे। हर स्वतंत्रता आंदोलन की जननी कलम ही है।

आलेख

लघु साहित्यिक पत्रिकाएँ परंपरा, महत्त्व और सोच

डॉ. गिरिजाशंकर मोदी
भागलपुर (बिहार)
9934095639

हिन्दी साहित्य की लघु साहित्यिक पत्रिकाएँ, एक साहित्यकार के अनवरत संघर्ष का प्रतिफलन है, जो जन्म के साथ ही जीवन के लिए संघर्ष करती हुई असमय ही दम तोड़ देती है। पर इन पत्रिकाओं के आविर्भाव का यह शुद्ध साहित्यिक अनुष्ठान अक्षुण्ण बना रहता है। मौत के इस ऊँचे होते ढेर पर रोज एक पौधा के उग आने का क्रम जहाँ एक ओर चौंकानेवाली बात है, वहाँ दूसरी ओर एक सुखद एहसास भी है कि साहित्य अपने सामाजिक सरोकार और उत्तरदायित्वबोध में सतत जीवित है। समय का श्वेत पत्र होती हुई यह समाज के प्रश्नों के बीच खड़ी हो, समाज के अंतिम व्यक्ति की बात करती है। सब कुछ झूठा हो सकता है, पर लघु पत्रिका के संघर्ष का साहित्य कभी झूठा नहीं होता, यह भोगे गये यथार्थ को उद्घाटित करती है। यह वहाँ है, जहाँ–जहाँ हमारी पीड़ा है, जहाँ हमारे युवा दूरस्थ क्षेत्रों में देख और भोग रहे हैं और पीड़ा के यथार्थ का लेखन कर रहे हैं।

इन पत्रिकाओं के साथ यह त्रासद स्थिति है कि ये अपनी जीवनयात्रा का शुभारंभ बड़े उत्साह और जीवन्तता के साथ मासिक रूप में करती है, फिर द्वैमासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और अनियतकालीन में तब्दील होती हुई साँसें तोड़ देती है। हिन्दी की लघु साहित्य पत्रिकाओं के इस हस्र का इतिहास लगभग सवा सौ साल पुराना है, जो हिन्दी की पहली पत्रिका 'कवि वचन सुधा' की नियति से ही जुड़ी थी। उसके बाद सरस्वती, चाँद, सुधा, रूपाव, हिन्दुस्तानी आदि पत्रिकाएँ अपनी उसी नियति के साथ पैदा हुईं और दम तोड़ दीं। हिन्दी भाषा और राष्ट्रीयता के उस घनघोर संकटकालीन युग में भी प्रताप नारायण मिश्र अपना पत्र 'ब्राह्मण' और प्रेमचंद अपनी पत्रिका मर्यादा, माधुरी, जागरण और हंस बहुत परेशानियों और घाटे के बीच प्रकाशित किया करते थे। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन उनका व्यापार नहीं, आत्मोसर्ग था और यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनका एक गौरवपूर्ण स्थान है।

भारतेन्दु और प्रेमचंद के युग की पत्रिकाओं को अपना हक ठोस चरित्र होता था और यह स्वतंत्रता और मानवीय मूल्यों के हित क्रांति का विगुल नाद हो संघर्ष का हरावल दस्ता होती थी। अपनी दुर्दशा को उजागर करती हुई वह कारणों को मिटाने की बात करती थी। पत्रकारिता के उस युग में एक सुखद बात यह थी कि किसी व्यावसायिक और गर्म पत्रिका की शुरुआत उस जमाने में न हुई थी। अतः साहित्यिक पत्रिकाओं के साथ कोई प्रतियोगिता नहीं थी। उस जमाने में न तो भौतिकता की अंधी दौड़ शुरू हुई थी और न बाजारवादी अपसंस्कृति की विषवेलि फैली थी। फिर भी मूल्यों को समर्पित महत् उद्देश्योंवाली इन पत्रिकाओं की ग्राहक संख्या देशभर में तीन सौ तक हो जाना एक बड़ी बात होती थी। इन कठिन आर्थिक परिस्थितियों के बीच भी इन पत्रिकाओं की संख्या रक्तबीज की तरह बढ़ती ही रही है। परिस्थितियों से जूझते ईमानदार साहित्यकार इस सोच से अनुप्राणित रहे हैं कि आदमी को साहित्य की आवश्यकता हो या न हो, पर साहित्य को आदमी की आवश्यकता है और आज की परिस्थिति में तो यह और भी गंभीर बात है।

दिल्ली में आयोजित सातवें दशक की लघु साहित्यिक पत्रिका संगोष्ठी में अनुमान से बताया गया था कि उस समय तक लगभग एक सौ अट्ठाईस पत्रिकाएँ प्रकाशित हो चुकी थी। पर पत्रिकाओं के प्रकाशन का क्रम लगातार बढ़ता चला गया है, चाहे क्यों न वह मात्र प्रवेशांक तक ही निकल सकी हो।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साहित्यिक पत्रिकाओं की बढ़ती संख्या एक ओर जहाँ साहित्यिक चेतना का इजहार करती है, वहीं दूसरी ओर पाठकों की घटती संख्या एक गंभीर सामाजिक स्थिति के पैदा होने की सूचना देती है। जनसंख्या की बढ़ती स्थितियों और शिक्षितों के अप्रत्याशित बढ़ते प्रतिशत के बीच तो होना यह चाहिए था कि पाठकों की संख्या भी उसी अनुपात में बढ़े, पर बात बिल्कुल विपरीत हो चली है। जबकि साहित्य आज लोकधर्मिता की दस्तकें हैं और साहित्यकारों की प्रतिबद्धता सत्ता और अनुशासन से नहीं, बल्कि आम जनता से है। यह आम आदमी के इर्द–गिर्द बुने जा रहे षड़यंत्रों की पड़ताल कर उसे उखाड़ फेंकने की तैयारी में जीती है। ऐसी त्रासद स्थितियों के भी तमाम दुश्वारियों को झेलते हुए एक साहित्यकार अगर एक ईमानदार जीवन जीते हुए अपने समय और समाज का सच उद्घाटित कर रहा हो, तो यह उसकी अपनी भाषा, अपने देश और समाज के प्रति निःस्वार्थ प्रतिबद्धता है। इस अपनी ईमानदार प्रतिबद्धता के एक लेखक अपनी सारी बुनियादी आवश्यकताओं को दरकिनार कर जो श्रम करता है, वह बिल्कुल सस्ता और फालतू होता है। आज संचार माध्यमों की क्रान्ति और बाजारवादी संस्कृतियों में एक चिंताजनक स्थिति इस हद तक पहुँच गई है कि पढ़े–लिखे परिवारों में भी पत्रिकाओं और किताबों के लिए जरा–सी भी जगह नहीं बची है। यहाँ एक बात विचारणीय यह भी है कि यह स्थिति हिन्दी पट्टी को छोड़कर अन्य प्रांतों में नहीं है। अन्य भाषा की पत्रिकाओं में अगर हम मलयालम को ही लें, तो पचास करोड़ हिन्दी भाषी दो करोड़ मलयालम भाषी से भी पीछे हैं। हिन्दी में अधिकतर पुस्तकों का पहला संस्करण पाँच सौ प्रतियों तक होता है, जबकि मलयालम की किसी भी पुस्तक की दो हजार प्रतियों का प्रथम संस्करण छपता है।

विश्वपटल पर अगर हम दृष्टि दौड़ाते हैं, तो पाते हैं कि अनेक देशों में तो कोई भी पुस्तक और पत्रिका छपते ही हाथोंहाथ बिक जाती हैं। वहाँ के लोग यह जानना चाहते हैं कि हमारे साहित्यकारों की सोच क्या है?हमारे हितचिंतन में वे कहाँ तक है और उन्होंने हमें किस रूप में देखा है। एक छोटे–से अविकसित देश अंगोला को ही लें, जहाँ 80 प्रतिशत आबादी निरक्षर है, वहाँ पिछले दिनों पाँच कविता संग्रह निकला और दो माह में देखते–ही– देखते उसकी दस हजार प्रतियाँ बिक गयीं। पूर्वी यूरोप के देशों और रूस में पुस्तकें और पत्रिकाएँ लाखों की संख्या में छपती हैं और वहाँ की जनता राशन की दुकानों की तरह पंक्ति में लगकर किताबें खरीद लेते हैं। दक्षिण कोरिया तो कवियों का देश कहलाता है। दक्षिण अफ्रीका में तो कविता हथियारों की तरह इस्तेमाल होती है। लातीनी अमेरिका की यह एक सांस्कृतिक विशेषता है कि वह प्रायः कवियों, लेखकों और बुद्धिजीवियों को राजदूत का पद या अन्य राजनैतिक पद देकर सम्मानित करता है।

इसके विपरीत अपने यहाँ स्थिति यह है कि 15–20 वर्ष पहले जितनी किताबें और पत्रिकाएँ छपती थीं, अब 45 प्रतिशत से भी कम छापी जा रही हैं। कागजों की कीमतें पहले दो तीन दशकों में 15 से 20 गुणा बढ़ चुकी है, जबकि रेडियो, टी.वी. आदि की कीमतें गिरी हैं। सरकारी दुर्नीतियाँ एक ओर देखिये कि एक लाख की आबादीवाले कस्बों में एक किताब की दुकान के ऊपर दस शराब की दुकानें और पाँच विडियो पार्लर नजर आते हैं। परिणामस्वरूप विडम्बना यह है कि हिन्दी लेखन से कोई साहित्यकार अपनी रोजमर्रा की जिंदगी भी चला नहीं पाते। फिर उनका लेखन उनके आत्मोसर्ग का एक ऐसा सुख है कि वह जिंदगी की दूसरी कई बुनियादी जरूरतें दरकिनार कर लेखक होने की नियति स्वीकार करते हैं।

उक्त परिस्थितियों में हिन्दी प्रदेश की लघु साहित्यिक पत्रिका कभी कोई व्यापार नहीं हुई। इनका प्रकाशन रचनाकारों का आत्मोसर्ग, समर्पण, संकल्प और सामाजिक सरोकारों के जीने का एक अतिरिक्त उत्साह है। यह ऐसी संवेदनात्मक स्थितियों की उपज है, जो आदमी के बिल्कुल करीब साँस लेती हुई उसका इतिहास बनती है। इसका सामाजिक सरोकार व्यवस्थागत विकृतियों के खिलाफ इनकिलाब करता है और मानवीय मूल्यों के स्थापनाहित अनवरत संघर्ष करता रहता है। यह मानवीय हित में हर हस्तक्षेप और विरोध के लिए सतत सचेत और सचेष्ट रहता है। यह अपने भोगे गये यथार्थ में जानती है और बिना हस्तक्षेप और

विरोध के कोई अनुकूल बदलाव कदापि संभव नहीं। इसका सब कुछ समय ज्ञात और भविष्य की चिंता में है। यही कारण विशेष है कि यह उन साहित्यकारों को जगह देता है, जो नैपथ्य की पीड़ा से अपने दायित्वबोध का निर्वाह नहीं कर पाता, जिससे आम लोगों की पीड़ा की ईमानदार अभिव्यक्ति न हो पाती। लघु साहित्यिक पत्रिकाओं का साहित्य अब मात्र समाज का प्रतिबिम्ब ही नहीं हो रहा है, बल्कि यह समाज के चेहरे को विकृत करनेवाले कारक तत्त्वों को मिटा देने की बात भी करती है। यह उन सारे लेखन को नकारती है, जो हमारे उत्पीड़न, शोषण और पीड़ाओं से अलग मात्र मनोरंजन की बात करती है। 'प्रतीक' का आरंभ करते हुए अज्ञेय ने लिखा है–'साहित्य और संस्कृति को जनता तक पहुँचाना होगा।'

लघु साहित्यिक पत्रिका एक ओर जहाँ मानवीय मूल्यों की स्थापना की चिंता में संघर्ष का हरावल दस्ता बनी हुई है, वहीं साहित्य के विभिन्न विधाओं की समृद्धि और विकास में इनका ऐतिहासिक योगदान रहा है। यह लघु साहित्यिक पत्रिका ही है, जो समयजात कई नई साहित्यिक प्रवृत्तियों को जन्म दे उसे विकसित कर रही है। कविता और कहानी से जुड़े अनेक आंदोलन और उनके नामकरण इन्हीं पत्रिकाओं की देन है। कविताओं के दर्जनों और कहानियों के भी कई नाम इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आये हैं।

इनके समय पर प्रकाशित विशेषांक और देश–विदेश की अन्य भाषाओं की अनुदित सामग्री हिन्दी साहित्य को एक विस्तृत फलक दे, एक नई गरिमा प्रदान की है। इन पत्रिकाओं द्वारा नये रचनाकारों की पुस्तकों की समीक्षा, फिर उसपर खासी बहस और समय–समय पर परिचर्याओं का आयोजन साहित्य की जीवंतता, प्रगति और उत्तरदायित्वबोध को कायम रखने का एक महती प्रयास है।

आज भूमंडलीयकरण के बाजारवादी उपभोक्ता संस्कृति की अंधी दौड़ में, जहाँ सिर्फ भौतिक सुख–सुविधा जुटाने की अंतहीन होड़ है, वहाँ पुस्तक, पत्र–पत्रिकाएँ आम आदमी के हाथों से छीनती चली जा रही हैं। परिणामस्वरूप संवेदनशून्यता का एक भयावह खतरा समाज पर मँड़रा रहा है और आज की सामाजिक दुर्व्यस्था, हिंसक प्रवृत्तियों और अनैतिक मूल्यों के खास कारकों में यह प्रमुख कारक हैं।

खाये–पकाये उच्चवर्ग के लोगों को तो साहित्यिक पत्रिकाएँ रास ही नहीं आती। इन्हें वे अपना दुश्मन समझते हैं। इसमें उन्हें अपने अस्तित्व का खतरा नजर आता है। दूसरी ओर इनकी साजिश की व्यावसायिक और गर्म पत्रिकाएँ प्रतियोगिता में आ आमलोगों की कमजोरी को उभार उसे आत्मसात कर दिग्भ्रमित कर देती है और निम्न आर्थिक वर्ग के लोग जिनके लिए ये पत्रिकाएँ लिखी जा रही हैं, वे सारी जिंदगी रोटी के लिए संघर्ष करते, एक छत की छाँव पाने की लालसा रखते और जवान होती बेटी की शादी की चिंता करते, अपना सारा जीवन गुजार देते हैं। इन्हें तो पढ़ने के, जीवन में कोई क्षण, नहीं मिल पाते हैं। इसके बावजूद इन पत्रिकाओं के साथ अपनी भी कई कठिनाइयाँ हैं। यह आर्थिक रूप से इतनी कमजोरी होती हैं कि अपनी कोई उचित प्रकाशन व्यवस्था नहीं कर पाती है। इन पत्रिकाओं को अच्छी रचनाएँ जुटाने में भी काफी परिश्रम करना पड़ता है; क्योंकि यह पारिश्रमिक नहीं दे पातीं। पारिश्रमिक न दे पाने के कारण अच्छे रचनाकारों की कमजोर रचनाएँ भी लौटाने का साहस न जुटा पातीं। इन पत्रिकाओं के प्रवेशांक के साथ–साथ अपनी छपास की भूख के कारण अनेक नये रचनाकार इनसे जुड़कर इन्हें सहयोग करने लग जाते हैं और फिर जब इसकी रचनाएँ छप नहीं पाती हैं, तो ये अपना सहयोग बंद कर देते हैं। अनेक ऐसे भी सहयोगी होते हैं, जो एक बार अगर सदस्यता भी ग्रहण कर लेते हैं, तो दुबारे नहीं और उसी एक साल की सदस्यता पर संपादक उन्हें पत्रिका भेजते रहते हैं कि वे पुनः सदस्यता ग्रहण करेंगे। अनेक ऐसी भी मनोवृत्ति के लोग हैं, जो पत्रिका मुफ्त प्राप्त करने के लिए नमूना प्रति के लिए कोई लिखा करते हैं। पचास करोड़ हिन्दी भाषा–भाषियों के बीच भी पाँच सौ तक ग्राहक का न जुटा पाना, अपनी भाषा और संस्कृति के लिए बड़े शर्म की बात है, जबकि इनके बीच से ही एक सामान्य दर्जे का व्यक्ति अपने सामाजिक सरोकारों से उत्प्रेरित हो अकेला ही संघर्षरत रहता है और पत्रिका की जीवंतता के लिए आर्थिक ऊर्जा प्राप्त करने हेतु बार–बार अपील करता है।

उक्त विषम परिस्थितियों में आज लघु साहित्यिक पत्रिकाओं और उनसे जुड़े साहित्यकारों पर यह एक दोहरी जिम्मेवारी आ गई है कि वह एक ओर जहाँ सृजन में है, वहीं दूसरी ओर पाठक वर्ग भी तैयार करें। क्योंकि जिनके लिए ये पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं, उन तक पहुँच ही नहीं पाती है। गाँव, कस्बे, चौक–चौराहे पर एक ऐसा माहौल तैयार किया जाए कि आम लोगों की समझ में यह बात आ जाए कि लघु पत्रिका का साहित्य हमारी ही दुर्दशा के खिलाफ हमारे ही हित चिंतन का संघर्ष है, इसमें हमारी धड़कनें और हमारा ही दर्द है और तब यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि ये पत्रिकाएँ आज का रामचरितमानस बन जाए। दूसरी सबसे गहरी जो बात जुड़ी है, वह यह है कि आज लोकतंत्र जिन दुखारियों से घिरा है, उसका निदान इसी के साहित्य से बहुत हद तक संभव है; क्योंकि लोकतंत्र के लिए जिस संवेदना, करुणा, उदारता, मूल्य और भावजगत की आवश्यकता है, वह इसी के साहित्य से संभव है।

कविताएँ

कोहरे की बढ़ गई हैं टहनियाँ

कोहरे की बढ़ गई हैं टहनियाँ
मौत का माहौल है

कोहरे की छांव ऐसी
सूर्य भी निस्तेज है
देह ऐसी गल रही ज्यों
भीग गलता पेज है
आग खोजे, कँपकँपाती हड्डियाँ
मौत का महौल है

गाँव की पगडंडियों के
स्वप्न है फुटपाथ पर
सूर्य घर्षण से उगाना
चाहते हैं हाथ पर
पेट में गीली पड़ी हैं लकड़ियाँ
मौत का महौल है

राजधानी ओढ़ बैठी
छद्म, छल का आवरण
रिस रहे हैं घाव मन के
हो रहा नैतिक क्षरण
कब खुलेंगी, धूप देने खिड़कियाँ
मौत का महौल है

सुर्ख लावा

सुर्ख लावा हो गए हैं पांव
तपती रेत में

गाँव ने हैं कर्ज बोये
मौत की फसल उगाई
अंजुरी–भर प्यास तड़पीं
आस ने चीखें दबाई
आज फिर सपने पड़े हैं
पांव मोड़े पेट में

हांक फिर वैसी लगी है
पक्ष बस प्रतिपक्ष में है
सत्य पर सब जानते हैं
स्वार्थ केवल अक्ष में हैं
शाकभक्षी फिर मरेंगे
समय है, आखेट में

चेतना, बदलाव क्या बस
ताज का बदलाव ही है
जीत कैसी, जीत है यह
हार का ठहराव ही है
देखना फिर उग न आएँ
नागफनियाँ खेत में

गरिमा सक्सेना
बंगलोर (कर्नाटक)
मो.– 7694928448

आलेख

साहित्य–यात्रा

डॉ0 गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र'

प्रकाश सूर्यवंशी
भागलपुर (बिहार)
9905440053

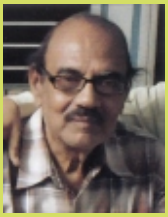

मंदरांचल से कृति के कैलाश तक

बिहार के साहित्यसेवियों, कवियों एवं आचार्यों में डॉ. गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र' का एक विशिष्ट स्थान है। वे एक कुशल अध्यापक, कवि , समीक्षक तथा साहित्यकार तो थे ही, साथ–ही–साथ मानव–प्रेम, एकता और समानता के मधुर वाद्ययंत्र भी थे।

गाँव की माटी में खेलकर लड़का किसान बनता है, लेकिन कृषि के साथ–साथ अध्ययन की लगन आदमी को शिक्षा की किन ऊँचाइयों तक पहुँचाती है, उसकी मिसाल थे 'कविजी' डॉ. गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र' का जन्म 3 अक्टूबर, 1913 ई. में बिहार के भागलपुर (वर्तमान में जिला–बाँका) जिलान्तर्गत भंडारीचक ग्राम, पोस्ट–बौंसी में हुआ था। गौरी बाबू की प्रारंभिक शिक्षा मंदरांचल के भंडारीचक गाँव की लोअर प्राइमरी पाठशाला में हुई। लोअर पास कर आप अपनी बहन के घर (चंपानगर, भागलपुर) पर रहकर शिक्षा प्राप्त करने लगे। कहते हैं कि उस समय मिट्टी के तेल की इतनी किल्लत थी कि उन्हें इस ढिबरी के पास बैठकर पढ़ना पड़ा, जहाँ पर उनकी बहन उस रोशनी में खाना बनाया करती थीं। बचपन में भी गौरी बाबू रात में सोते वक्त अपनी माँ की पीठ पर कुछ–कुछ अंगुली से लिखते रहते थे, जो लिखने का क्रम उम्र पर्यन्त चलता रहा।

गौरी बाबू ने 'मेरा बचपन' (प्रकाशित किशोर) में लिखा है–'कई कारणों से पढ़ाई–लिखाई में बड़ी अस्त–व्यस्तता रही। फिर मैट्रिक में मैं बाँका हाई स्कूल, बाँका आ गया और वहीं से 1934 में मैट्रिक पास किया। तदुपरांत वर्षों तक तेजनारायण जुबली कॉलेज, भागलपुर (वर्तमान टी.एन.बी.कॉलेज) में अध्ययन किया। गणित में अनुतीर्ण हो जाने के कारण मुझे आई.ए. की परीक्षा में सफलता न मिल सकी। घर की दयनीय दशा के कारण मुझे अपनी पढ़ाई स्थगित कर देनी पड़ी। दो वर्षों तक घर पर रहकर साहित्य–सेवा करता रहा। नौकरी की समस्या सामने आने पर मैंने 1938 में टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल ज्वाइन किया। 1940 में सी.टी. प्रथम श्रेणी में पास कर हिन्दी शिक्षक के रूप में एक स्कूल में अध्यापन का कार्य करने लगा। 1941 ई. में स्वतंत्र छात्र के रूप में द्वितीय श्रेणी में आई.ए. और 1944 में हिन्दी और दर्शनशास्त्र लेकर 'डिसटिंगशन' के साथ बी.ए. पास किया। बी.ए. पास करने के बाद मैंने एक वर्ष तक टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल में भी हिन्दी अध्यापक की जगह पर कार्य किया।'

गौरीशंकर मिश्र ने 1940 में सी.टी. परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर पहला स्वर्णपदक प्राप्त किया था। इस बीच श्याम सुंदर विद्या निकेतन भागलपुर में सहायक शिक्षक के पद पर उनकी नियुक्ति हुई। आई.ए. पास करने के बाद श्यामसुंदर हाई स्कूल से त्यागपत्र देकर उन्होंने अनाथालय मिड्ल स्कूल, नाथनगर, भागलपुर में 'हेडमास्टर' का कार्यभार सँभाला। इस प्रकार 1940 से 1947 तक अनेक स्कूल में कार्य करते हुए 1947 में हिन्दी साहित्य से एम.ए. प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान स्वतंत्र छात्र के रूप में प्राप्त किया, जिसमें उन्हें 83 प्रतिशत नंबर मिले थे, जो कि आजतक पटना विश्वविद्यालय के एम.ए. (हिन्दी) का मील पत्थर बना गड़ा हुआ है।

बी.ए. से एम.ए. तक पहुँचने के दौरान ही उनके पिता पंडित ठाकुर प्रसाद मिश्र का स्वर्गवास हो गया। उसके साल–दो साल बाद ही माताजी का भी देहान्त हो गया। फलतः युवक गौरी बाबू पर पारिवारिक जिम्मेवारी का बोझ और भी बढ़ गया। फिर भी वे अध्ययनशील रहे और 1947 में एम.ए. की परीक्षा स्वतंत्र रूप से पास की। इसके लिए उन्हें पटना विश्वविद्यालय द्वारा स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। साथ ही उन्हें हिन्दी एम.ए. में साहित्य और भाषा में सर्वप्रथम होने पर 'रमादेवी स्वर्णपदक' भी प्राप्त हुआ।

1948 में आप पटना कॉलेज, पटना में हिन्दी प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। छः महीने तक वहाँ कार्य करने के बाद घरेलू परिस्थिति से विवश होकर वहाँ से त्यागपत्र देकर तेजनारायण जुबली कॉलेज वर्तमान टी.एन.बी. कॉलेज भागलपुर आ गए। यहाँ रहते हुए आपने बिहार विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. स्वतंत्र छात्र के रूप में किया। दिसम्बर 1963 में आप टी.एन.बी. कॉलेज से स्थानांतरित होकर भागलपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में आ गये और साहित्य और शिक्षा की सेवा में लगे रहे।

गौरी बाबू एक सीधे–साधे व्यक्ति थे। उनमें साहित्य सृजन की अद्‌भुत क्षमता थी। उन्होंने अपने पचास वर्षों की साहित्य–यात्रा में हिन्दी साहित्य के कई पड़ाव तय किये। आज की तथाकथित साहित्यिक गुटबाजी में वे कभी शामिल नहीं हुए और शायद यही कारण था कि उनकी छवि राष्ट्रीय साहित्यकारों में नहीं बन पायी। वे सच्चे कर्मयोगी थे, जिन्हें सिर्फ साहित्य, लेखन, पठन–पाठन से मतलब था, तभी तो 58 वर्ष की उम्र में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया।

आप एक निष्ठावान अध्यापक, छंदज्ञाता, शोधार्थी और निश्छल हृदय इंसान थे, जिन्होंने अपने इर्द–गिर्द कोई मुखौटा नहीं लगाया।

आपकी पहली कविता 'चाह और तस्वीर' है, जो 'सहेली' पत्रिका के अगस्त 1932 के अंक में प्रकाशित हुई थी और उसके बाद से आप कविता की गोद में बैठकर ही साहित्य यात्रा करते रहे। आपकी कविताएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं और आप साहित्य जगत में एक संवेदनशील कवि के रूप में पहचाने जाने लगे। जिन महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं में आपकी बहुतेक कविताएँ प्रकाशित हुई हैं, वे निम्नलिखित हैं–गंगा, बालक, कल्याण, हंस, नालन्दा, प्रभाकर, छाया, बिजली, जागृति, चाँद, महिला, बीसवीं सदी, विश्वमित्र, नवशक्ति, विशाल भारत, किशोर, उषा, सरस्वती, प्राच्य भारती, अवन्तिका, आर्यावर्त, शतदल, ज्योत्स्ना, मंगलदीप आदि। इन पत्रिकाओं के अलावे भी आपके कुछेक रचनाएँ छिटपुट ढंग से विभिन्न कस्बाई और शिक्षण–संस्थाओं से निकलनेवाली पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं, किन्तु आप सर्वाधिक काल तक 'हंस' (संपादक–प्रेमचंद) पत्रिका से जुड़े रहे।

आपने संस्कृत और अंग्रेजी में भी कविताएँ लिखीं। आपकी सरलता आपकी कविताओं में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। आप अनुशासित विचार के थे, इसलिए आपकी रचनाएँ भी छंद के अनुशासन में ही पल्लवित–पुष्पित हुई हैं। आपकी कविताएँ निराशा के कोहरे से आच्छादित हैं। सम्प्रेषणीयता की लहर इनकी रचनाओं में आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं, जो शायद कम ही कवियों की रचनाओं में देखने को मिलती हैं। द्विजेन्द्र जी की सभी रचनाएँ तालबद्ध और संगीतबद्ध हैं। 1957 में निराशा से गौरी बाबू को मुक्ति मिल जाती है और 'मृत्यु के दर्शन' का सत्य, शिव और सुंदर रूप प्रतिबिम्बित होने लगता है। आपमें तात्कालिक विषयों पर भी कविता रचने की क्षमता थी। 1962 में जब चीनी आक्रमण हुआ, तो उसपर भी द्विजेन्द्रजी की कलम चुकी नहीं। चीनी आक्रमण पर उनकी कई एक कविताओं का प्रसारण आकाशवाणी के पटना केन्द्र से हुआ। आपने तुलसीदास, हरिऔध और प्रेमचंद पर भी कविताएँ लिखीं।

आपकी लेखनी काव्य के साथ–साथ नाटक, आलोचना, निबंध, व्यंग्य, कहानी और छंदोविवेचन पर समान रूप से चलती रही और साहित्य जगत को बहुमूल्य कृत्तियाँ सौंपते रहे। डॉ. द्विजेन्द्र रचित तीन गीतिनाट्य हैं, जो काफी लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण रहे हैं–राजा परीक्षित, पतिंवरा और देहान्तर। 'राजा परीक्षित' में मृत्यु का मानवीकरण और उसके सत्य, शिव एवं सुंदर स्वरूप की कल्पना आपकी नवीन प्रतिमा का चमत्कार है। शारीरिक सौंदर्य के ऊपर आध्यात्मिक सौंदर्य की विजयगाथा है–पतिंवरा। रूप के ऊपर तप की जयमाला

है–पतिंवरा। आधुनिक हिन्दी साहित्य के लिए एक दान–अवदान है–पतिंवरा।

है काम भोग से नहीं काम होता प्रशांत
वह बढ़ता जैसे पाकर हवि नित हव्यवाह।''देहान्तर से'

इसी सार्वभौम एवं सार्वकालिक सत्य को प्रत्यक्ष करने के लिए राजा ययाति की मनोरंजक कथा की सृष्टि 'देहान्तर' गीतिनाट्य में की गई है।'राजा परीक्षित'का रेडियो नाट्य रूपांतरण 'मृत्युछाया' नाम से आकाशवाणी दरभंगा केन्द्र द्वारा तैयार किया गया और पटना, राँची, भागलपुर एवं दरभंगा केन्द्र से एक साथ प्रसारित किया गया।

'सावित्री' द्विजेन्द्रजी रचित खंडकाव्य है। उपेक्षित– उपेक्षिताओ पर काव्य–रचना का जो सिलसिला हिन्दी कविता में कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने चलाया था, द्विजेन्द्रजी ने 'सावित्री' के द्वारा उसे आगे बढ़ाया है। इसमें मृत्यु के सत्यरूप का वर्णन है। पौराणिक घटना में कवि ने नूतन घटनाओं का समावेश न कर परंपरा के प्रति अपनी भक्ति एवं श्रद्धा भाव प्रदर्शित किया है।

'पौरुष की पराजय' द्विजेन्द्रजी का बारह सर्गों का महाकाव्य है, जिसमें कर्ण की कथा कही गयी है। कथा चिर–परिचित ही है, लेकिन इस महाकाव्य में महाकवि 'द्विजेन्द्र' ने पांडव बनाम कौरव या अर्जुन कर्ण की संघर्ष–कथा बनाने के बजाय पौरुष बनाम नियति की संघर्ष गाथा बनाकर अपनी अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है। संस्कृत साहित्य के विद्वान होने के बावजूद महाकाव्य की भाषा संस्कृत–बोझिल नहीं है। द्विजेन्द्र की आरंभिक कविताओं में निराशा का जो स्वर था, बाद में दर्शन और चिंतन का रूप ले लिया।

प्रसिद्ध आलोचक रविभूषण के अनुसार–'हिन्दी साहित्य में द्विजेन्द्र जी का महत्व एक कवि के रूप में कम है। साहित्य को उनकी प्रमुख देन छंद संबंधी है। छंदशास्त्र के वे अपने समय के एकमात्र अधिकारी विद्वान थे। उन्हें छंदाचार्य कहा जा सकता है। 'द्विजेन्द्रजी' एक प्रकार से छंद के विश्वकोश थे–संस्कृत और हिन्दी में छंदों के।

छंदशास्त्र की प्रामाणिकता को स्पष्ट करने के लिए ही आपने 'सूर साहित्य का छंदःशास्त्रीय अध्ययन' को अपने शोधकार्य का विषय बनाया, जिसमें सूर साहित्य में प्रयुक्त छंदों का इतना सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया गया कि छंदोविवेचन के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ। इसी ग्रंथ पर आपको पीएच.डी. के स्थान पर डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया गया।

डॉ. द्विजेन्द्र हिंदी में छंद के अकेले अधिकारी विद्वान थे। छंद के क्षेत्र में आपका योगदान हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। आपने 3000 वर्षों के साहित्य का छंदोनिरूपण किया है। अपभ्रंश साहित्य, संस्कृत साहित्य से लेकर छायावादेतर साहित्य तक की आपकी छंदयात्रा हिन्दी साहित्य के छंदो–इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना है और ऐसा बृहदकार्य न उसके पूर्व कभी हुआ था और न कभी अबतक हुआ है। आपका यह कार्य अलौकिक है।

आपने अपने जीवनकाल में सिर्फ एक व्यक्ति को शोधकार्य कराया–श्रीरसिकलाल साह को, उनके शोध का विषय था–'लाला भगवान दीन की छंदोयोजना।' द्विजेन्द्र पर शोधकार्य करने एक–दो लोग आये। डॉ. राधाकृष्ण सहायजी के निर्देशन में एक शिक्षक और बिहार विश्वविद्यालय में एक महिला शोधार्थी, जिनके शोध का विषय था–'गीतिनाट्य परंपरा और डॉ. गौरीशंकर मिश्र द्विजेन्द्र' लेकिन दोनों शोधकार्य पूर्ण न हो सके। पिछले वर्ष भागलपुर विश्वविद्यालय से नूतन राय ने अपने शोधग्रंथ 'डॉ. गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र' : जीवन और साहित्य' पर डॉ0 प्रतिभा राजहंस के निर्देशन में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

द्विजेन्द्र को 'हिन्दी संस्थान, लखनऊ' द्वारा पुरस्कृत किया गया। बाद में 1981 में आयोजित वरिष्ठ साहित्यसेवियों के समारोह में 'बिहार सरकार' ने सम्मानित किया।

गौरी बाबू विश्वविद्यालय की सेवा से सन् 1976 में सेवा निवृत्त हुए और 9 सितम्बर 1982 को साहित्य–सेवा से अवकाश प्राप्त कर परलोक चले गये।

आप 'द्विजेन्द्र' हिन्दी साहित्य के ऐसे गुमनाम सेवक थे, जो हिन्दी को व्यावहारिक और सरल बनाने के पक्षधर थे। उन्होंने पचास वर्षों की साहित्यिक यात्रा में हिन्दी जगत को कई अनमोल कृतियाँ पदान कीं–

काव्य–पौरुष की पराजय (महाकाव्य), सावित्री (खंडकाव्य), नीलिमा (काव्यसंग्रह), टूटा तार एवं मधुपर्क (काव्य संग्रह, क्रमशः नीचे से दोनों प्रकाशनाधीन।

गीतिनाट्य–राजा परीक्षित, पतिंवरा और देहान्तर

छंदोविषयक–सूर साहित्य का छंदःशास्त्रीय अध्ययन (शोधप्रबंध), हिन्दी साहित्य का छंदोविवेचन, छायावाद का छंदोऽनुशीलन, छंदोदर्पण (अभिनव छंदशास्त्र) संस्कृत साहित्य के छंदों का विहगावलोकन और छंदोविचिति (दोनों प्रकाशनाधीन)

आलोचना–भारतीय साहित्य

अन्य–पंचपल्लव (कहानी, निबंध, व्यंग्य, संस्कृत और अंग्रेजी कविताएँ) प्रकाशित।

पुलवामा से बालकोट

सपना मांगलिक
आगरा (यू.पी)
मो. 8899124238

प्रेम दिवस की आड़ में छुप, गीदड़ सा तुमने वार किया
धान कटोरे पुलवामा को, लालों के लहू से लाल किया

भय नहीं उड़ी–पुलवामा से, मजबूत हौसले पायें हैं
बांधला, पूँछ, बालकोट तक, हम गाज गिराते आये हैं

कभी जेहादी नारों से तो, कभी तुच्छ हथियारों से
बाल न बांका कर सकते तुम, पा शय चीनी मक्कारों से

तहजीव–अलिफ की चढ़ा बलि, बचपन अँगार बनाते हो
बच्चो को लालच हुरों का, देखकर बन्दूक थमाते हो

बिगाड़ेगा क्या जैश मोहम्मद, इमरान तो नेता छक्के हैं
चीन अमेरिका भी अब अपने, तेवर से हक्के–बक्के हैं

ओ नक्सलियों की दुम सुन लो, छुपकर न आघात करो
फटी जेब पहले सिल लो, औकात में रह कर बात करो

तुम ऊँगली एक उठाओगे, हम बाजू धर से गिराएंगे
तुम लाश एक गिराओगे, हम कब्रिस्तान बनायेंगे

पिया गर दूध है माँ का तो, मैदान में खुलकर आ जाओ
कश्मीर का दावा करने वालो, लहौर बचाकर दिखा जाओ

विभीषणों से मिला हाथ तुम, समझौते जो करवाए हो
झाँक गिरेबान देख भी लो, क्या ढ़ेले की इज्जत पाए हो?

इतिहास गवाह है शुकर सा, गैरों के मल को चखते हो
मजहबी सुनो गद्दारो, माँ का ही सौदा करते हो

माँ के दो टुकड़े कर डाले, बदले में तुने क्या पाया है
कुछ फेकी रोटी तोड़ी हैं, और सम्मान लुटाया है

समीक्षा

खाली हाथ कबीर : चंदन गंध की धूप

शिवानन्द सिह 'सहयोगी'
शिवाभा, ए–233
गंगानगर, मेरठ (उ.प्र.) 9412212255

हिन्दी साहित्य में गीत ने बदलते समय के साथ अपने कई पड़ाव बदले हैं। गीत मानव मुख से कब और किन परिस्थितियों में निकला, एक वैज्ञानिक और ऐतिहासिक खोज का विषय है। गीत को कई नामों से पुकार गया और उसे हिन्दी साहित्य ने स्वीकार किया। आजकल जो गीत की रूपरेखा है, वह नवगीत में समाहित है। 'गीत' में 'नव' जुड़ जाने से 'नवगीत' बना है। कहने का तात्पर्य कि नवगीत 'गीत' ही है, किन्तु कुछ मान्यताएँ हैं, जिसके कारण वह गीत होकर भी गीत नहीं, नवगीत है। नवगीत गीत की हँड़िया में नई समकालीन कविता की आँच पर नये यथार्थवादी प्रयोग, शिल्प, भाषा, प्रतीक, शैली, रूपक, बिम्ब, कहन, कल्पना, मुहावरा और सामाजिक सरोकार के दूध को संक्षिप्तता, मार्मिकता, सहजता, सरलता, बेधक शक्ति का समन्वय एवं सामयिकता की लकड़ी को शब्द की दियासलाई, संवेदना की तीली, अनुभूति की चिनगारी से जलाकर और अच्छी तरह औंटकर जमाये गये सजाव से लयात्मकता की मथानी से मथकर निकाला गया नवगीत है।

नवगीत लेखन भी कम से कम मेरी समझ से छह वर्गों में बँटा हुआ है। एक वर्ग तो वह है, जो नवगीत को लयखंड की अपेक्षा अर्थखंड में लिखना पसंद करता है और ऐसा लगता है कि उनका नवगीत छंदमुक्त है, किन्तु वे अपनी नवगीत को पूरी तरह से लय की सीमा में रखते हैं। उनके नवगीत गेय तो नहीं होते, किन्तु पठनीयता में लय के तारतम्य को बनाए रखने में सफल रहते हैं। उनके नवगीत संस्कृत के कुछ कठिन शब्दों से सँवरे होते हैं, जो आम जनता में प्रचलित नहीं होते, किन्तु भाव का संवर्द्धन करने में सक्षम होते हैं। दूसरे वर्ग के नवगीतकार वे हैं, जो नवगीत को छंद और लय से जोड़कर खड़ा करते हैं। अपने नवगीत के 'स्थायी' का एक अपना अलग नया रूप तय करते हैं और अंतरे को एक छंद में बाँधकर रखते हैं और लिखते हैं। 'अंतरे' की अंतिम पंक्ति को जो 'अंतरे' को 'स्थायी' से जोड़ने का काम करती है, 'स्थायी' की पहली पंक्ति या दूसरी पंक्ति के समान उत्तरदायित्व की रखते हैं, जो गेयता के लिए आवश्यक होती है और नवगीत के कथ्य को 'अंतरे' और 'स्थायी' से जोड़ देती है। इस श्रेणी के नवगीतकार नवगीत में मात्रा विधान के अनुशासन के सम्मान में खड़े होते हैं और नवगीत में लय और गेयता की एकरूपता को प्रारंभ से अंत तक निर्वाहन करने की कला में प्रवीण होते हैं। तीसरे वर्ग के नवगीतकार दूसरे वर्ग की नवगीतकारों के बिल्कुल साथ खड़े होते हैं, किन्तु कहीं–कहीं छंद विधान और मात्रा विधान से थोड़ा अलग हटकर नवगीत को रचते हैं और वे ऐसा अपनी संवेदना को और सशक्त करने के लिए करते हैं। उनकी लय की संरचना अंतरों के पनघट से अपने स्वर के कंठ को बस सटाए रखती है, ताकि नवगीत अपनी लय और तथ्य से न भटके। चौथे वर्ग के नवगीतकार वे हैं, जो कम शब्दों में अधिक बात कह तो देते हैं, किन्तु नवगीत को लय में रखकर भी नवगीत की लय में समानता नहीं रख पाते और नवगीत को मात्रा विधान में कुछ छूट देने के पक्षधर होते हैं। लय का सुर और स्वर स्थिर नहीं रहता, शब्द संयोजन के साथ लय की पगडंडी पर इधर–उधर मुड़ता और दिशा बदलता रहता है, किन्तु नवगीत अपने लक्ष्य पर खरे होते हैं, मारक होते हैं। पाँचवें प्रकार के नवगीतकार वे हैं, जो छंदमुक्तता का समर्थन करते हैं और वे यह मानते हैं कि पंक्तियाँ चाहे जितनी बड़ी हों, उनमें भावुकता और आंतरिक लय हो तो वह नवगीत है, भले ही उसे पढ़ने में गद्यात्मकता का ही आभास क्यों न हो। ऐसे नवगीतकार बहुधा विचारपरकता को अपना आधार बनाते हैं। छठवीं श्रेणी के नवगीतकार वे हैं, जो अपने नवगीतों में लय और कथ्य को बाँधकर तो रखते हैं और हिन्दी से इतर शब्दों का प्रयोग करने में नहीं हिचकते। बोली और प्रांतीय शब्द को नवगीत को बल प्रदान करते हैं और उनमें मिठास का संचार है, किन्तु अंग्रेजी और उर्दू के शब्द भाषा शैली की लीनता को सरसता से दूर ले जाते हैं। नवगीत का श्रेणीबद्ध होना स्वाभाविक है। यदि ऐसा न हो तो नवगीतकारों की शैली एक ही रहेगी और उनमें अंतर करना बहुत ही दुष्कर कार्य हो जाएगा। भाव बिम्ब आदि अलग तो हो सकते हैं, किन्तु लय की गेयता में एकरूपता की आशंकाओं का निवारण होना कठिन कार्य हो जाएगा। इस स्तर पर नवगीतकारों का विभाजन तो हम उचित नहीं मानते, किन्तु यह बात खुलकर कह सकते हैं कि डॉ. मधुकर अष्ठानाजी नवगीत के दूसरे श्रेणीकरण के नवगीतकार हैं। इस क्रमबद्धता को ऊपर–नीचे भी किया जा सकता है। नवगीतकारों की वरीयता से इसका कुछ लेना–देना नहीं है। यह अपनी बात कहने का एक सामान्य क्रम है। नवगीतकार डॉ. अष्ठाना नवगीत की गेयता से कोई समझौता नहीं करते और नवगीत में मात्रा विधान के पोषक हैं। डॉ. अष्ठाना के नवगीत और वे स्वयं नवगीत के क्षेत्र में किसी परिचय की नई कामना रखनेवाले नवगीतकार नहीं हैं। आप नवगीतकार के साथ कुशल समीक्षक भी हैं। यद्यपि कि समीक्षा के क्षेत्र में मेरा अनुभव 'खाली हाथ कबीर' की तरह है। बहुत ही नया है, खाली है। उनका 'खाली हाथ कबीर' ही है। डॉ. मधुकर अष्ठानाजी के साथ नवगीतों का 'खाली हाथ कबीर' हिन्दी साहित्य के लिए पुष्पगुच्छ है, जो कुल 144 पृष्ठों के फलक पर नवगीत के पुरोधा आदरणीय कुमार रवीन्द्रजी की सुकोमल भूमिका के साथ सुशोभित है। 'खाली हाथ कबीर', नवगीत के प्रकाशमान नक्षत्र आदरणीय डॉ. माहेश्वर तिवारीजी (मुरादाबाद) और नवगीत के स्मरणीय हस्ताक्षर श्रीमयंक श्रीवास्तवजी (भोपाल) को समर्पित किया गया है, जो नवगीत के स्तंभ हैं।

नवगीतकार डॉ. मधुकर अष्ठानाजी के नवगीत समाज की हर दुखती नस की पीड़ा के साथ खड़े हैं। समाज की हर घटना पर उनकी पैनी लेखनी की निगाह पड़ी है। पुस्तक का पहला ही नवगीत एक कालजयी नवगीत है, जिससे इस पुस्तक का नाम 'खाली हाथ कबीर' लिया गया है। राजनीति के ऊपर एक कठोर व्यंग्य करते हुए यह नवगीत, सबको सब कुछ सूचित करते हुए न कहकर भी बहुत कुछ कहने में सफल हुआ है। राजनीतिक व्यक्ति केवल अपनी कुर्सी की दौड़ का परिणाम अपने पक्ष में करने के लिए कई–कई धंधे और हथकंडे अपनाता है और जब राजपथ की सड़कों की हवा उसे मिलने लगती है, तो गाँव की पगडंडी से नाता तोड़ लेता है और फिर पाँच साल के बाद चुनाव के समय ही गाँव की ओर अपना 'धराऊ' आश्वासन का कुरता पहनकर जनता के सामने हाथ फैलाता है, किन्तु सालों बीतने के बाद भी आम आदमी को आम की गुठली पर ही गुजारा करने को बाध्य होना पड़ता है और वे नेताजी जो बीच सड़क से उठकर दिल्ली या अपने प्रान्त के राजधानियों में गये थे, एक पूँजीपति बन जाते हैं, तो एक नवगीतकार की लेखनी मौन कैसे रह सकती है। इस अव्यवस्था और असमानता के विरुद्ध कवि कह उठता है–

लिख न सके हम सत्तर सालों में
अपनी तकदीर सारे जग की
खैर मनाते हम रह गये फकीर।(पृ. 22)

नवगीतकार यह सब देखकर दंग तो है, किन्तु वह चुप नहीं बैठता, समय के साथ संघर्ष करने लिए और अव्यवस्था से दो–दो हाथ करने लिए वह तैयार रहता है। वह जानता है कि 'बाबा' ने जो कमरिया दी है, उसपर कोई रंग नहीं

चढ़नेवाला। वह यह भी जानता है कि जीवन रोजी–रोटी का अंतहीन गीत गाते–गाते ही बीत जाएगा और अंततोगत्वा साथ के रिश्ते–नाते भी साथ छोड़ जायेंगे और 'प्राण' के 'कबीर' को इस दुनिया से खाली हाथ ही जाना होगा, तो क्यों न कुछ ऐसा सार्थक प्रयास किया जाए कि वह आम आदमी की आवाज हो, आम आदमी के द्वारा हो और आम आदमी के लिए हो। रचनाकार की दृष्टि यह देखने में सफल है कि जो रोशनी की बात करते हैं, वे ही अंधेरे के पक्षधर हैं। इनका घूमना सैदव आकाशमार्ग से होता है। धरातल पर क्या हो रहा है, उससे सदा जानकर भी अनजान बने रहते हैं और ऐसी काली गुफा में छिपकर काले काम करते हैं कि वह किसी दूरबीन से भी दिखाई नहीं देता। एक नवगीत क्या कहता है–

बात करते रोशनी की अँधेरे के पक्षधर हैं
घूमते आकाश में ये अनदिखे काले विवर हैं।(पृ. 23)

नवगीत का क्षेत्र किसी सीमा में नहीं बँधा है। यह एक अंतहीन फलक है। यहाँ आम आदमी का हर सरोकार है, तो प्रेम का पागलपन भी है, जो जीवन का एक हिस्सा ही है, जहाँ आदमी अपना सब कुछ भूल जाता है। यहाँ तक कि प्यार की डगर पर असफल होकर वह अपनी पलक झपकाना तक भूल जाता है। एक नवगीत इसी संवेदना में डूबकी मारता हुआ–

ठगे गये दो नयन पलक झपकाना भूल गये
आना याद रहा लेकिन हम जाना भूल गये।(पृ. 38)

एक समय था, जब हिन्दी साहित्य में यह कहा गया कि 'गीत मर रहा है' और उस समय गीत के रचनाकार नई कविता के समक्ष अपने को खड़ा करने लिए नई ऊर्जा का संचयन अपने गीत में करने लगे और नवगीत उभरकर समय के धरातल पर खड़ा हुआ। नवगीत को बचाने के लिए नवगीतकार का प्रयास अनमोल है और एक सच्चाई है। कवि कहते हैं–

गीत को आये बचाने हम प्रगति का पहन चीवर
तोड़ते हर व्यूह दुर्गम मूल्य से अभिसिक्त सीकर
सिद्धियों से ऋद्ध कल से आज हम तो सौगुने हैं।(पृ.43)

आजकल की राजनीति की स्थिति ठीक नहीं है। शिक्षा, चिकित्सा, पढ़ाई, पूजा, मंदिर, कथावाचन, उपरोहिती और समाज की हर तथाकथित जनसेवा एक बाजार और विज्ञापन हो चुकी है। काम कम, प्रचार अधिक की जिंस पहने राजनीति अपनी जीत के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है, सिवा जनहित के काम के। कहा तो यही जाता है कि जो निर्णय लिया गया है, उससे आम जनता को लाभ होगा, किन्तु उसे लागू करने के पीछे अपनी राजनीतिक लाभ–हानि का जोड़–घटाव, गुणा–भाग अवश्य लगाया जाता है। नीति और नारों का चयन जनता को बहकाने के लिए आकर्षक बनाया जाता है। राजनीति, सेवा कम, व्यापार अधिक हो गयी है। यह एक उद्योग की तरह फैल रही है और नेता या उम्मीदवार अपनी जर–जमीन, गहना आदि बेचकर चुनाव जीतने के लिए कोई भी हथकंडा अपनाने से नहीं चुकते। यहाँ तक कि वह अपनी माँ का मंगलसूत्र और पिता के बने–बनाये स्वाभिमान को भी बेचने पर उतारू हो जाते हैं। राजनीति एक पैतृक सम्पत्ति ओर बपौती बनती जा रही है और लोकतंत्र की जगह राजतंत्र और परिवारतंत्र अधिकार जमाता जा रहा है। एक नवगीत–

माँ का मंगलसूत्र पिता का स्वाभिमान बेचा
कठपुतली राजा ने अब अपनी जुबान बेचा
गाफिल छक्के–पंजे से बंधन मजबूत हुए
उसके सिर पर जयचंदी के बोझ अकूत हुए
हाथ काटकर दृष्टि गँवाकर देशगान बेचा।(पृ. 51)

आजकल समाज में घिनौने रूप को शब्द में समेटते हुए नवगीतकार बहुत ही सजग और सचेत हैं। आदमी समय के साथ कैसा खेल खेल रहा है, उसे देखकर कोई भी अपने मन में एक चिंता की लकीर होने का अनुभव कर सकता है। एक आदमी सारे समाज को धूमिल करने पर उतारू है, तो समाज का उद्धार कौन करेगा?समाज को ऊपर उठाने में सदियों बीत गई होंगी, किन्तु बिगड़ने के एक पल की काफी है। कवि उन मुखौटों की पहचानकर उनसे संघर्ष करने के लिए उत्सुक है, किन्तु सामने जब एक नहीं, अनेक लोग मुखौटे लगाकर खड़े हैं, तो वह कितनों का मुँह नोचे। नवगीतकार का एक नवगीत इस बात की सब कलई खोल रहा है। देखें–

जब लगे अनगिन मुखौटे हम कहाँ तक नोचते
शहद है संवाद में व्यवहार कडुई नीम है
भूख–भ्रष्टाचार–भय सारी कथा की थीम है
पीर मुखरित क्या करें हम अश्रु केवल पोंछते।(पृ. 59)

शहर से गाँव और गाँव से शहर तक की समस्याएँ, विकास, आम आदमी का सुख–दुःख, पशु–पक्षी, रहन–सहन, जीवन–मरण से सुसज्जित ये नवगीत बहुत ही मधुर बन पड़े हैं। गाँव का कोना–कोना, शहर की गली–गली गीत के साथ खड़ी है। बिजली की चकाचौंध और आँख मिचौनी है, तो एक ओर अनेक परिवार की व्यथा भी खड़ी है। आपसी मेलजोल, बिछुड़ेपन की दयनीय यादें भी आँख में आँसू भरकर अपनी बीती कहने का संकोच नहीं पालतीं। गाँव का मीठा आम किसी को अपना गुलाम बनाने में देर नहीं करता। आम फलों का राजा है। यहाँ बाग का 'मीठा आम' है, जो अनायास अपनी ओर किसी को आकर्षित कर लेता है। अनुभव किया जा सकता है कि नवगीतकार के जीवन को एक प्रेरणा उस मीठे आम के पेड़ से मिली होगी, तो वह कैसे नवगीत की संवेदना का हिस्सेदार न बने। आम का पेड़ किसी शहर में नहीं मिलेगा। इसे शहर के पार्क या सड़क भी एक कोने पर नहीं बैठने देते। गाँव आम को अपनी पीठ और छाती पर लिटाकर सुलाता और दोनों हाथों से 'घुमरी परौवा' खेलाता है। 'मीठा आम' गाँव का एक प्रतीक भी हो सकता है। 'मीठा आम' कैसा है, चूसें, खायें, आनंद लें।–

कितने मीठे आम तुम्हारे गाँव के
हम हो गये गुलाम तुम्हारे गाँव के
इतना रूप–रंग बरसे सपनों की आँख जुड़ाये
लोकगीत ऋतुराज सुनाये पायल राग बजाये
कण कण लगे ललाम तुम्हारे गाँव के।(पृ. 91)

बात जब भी चलती है, तो आज इस समय की एक विडंबना है कि वह जर–जोरू–जमीन और रम–राम–राजनीति पर आ ही टपकती है। रोजी–रोटी के चक्कर में देह और जिंदगी सैदव सूर्य की धूप की होलिका में होलिकादहन होती रहती है। जिंदगी की एक नई परिभाषा गढ़ते हुए कवि ने एक कालजयी नवगीत को अपनी पीड़ा से उकेरा है, उसे संदर्भ में न लाना, उस नवगीत के साथ अन्याय होगा। थोड़ा लिखना, ज्यादा समझना। लीजिए वह नवगीत आपके सामने ये रहा–

समय की होलिका में जिंदगी प्रहलाद है बाबू
सघन संवेदनाओं का सजल प्रतिवाद है बाबू।(पृ. 107)

मन सदा अपनी इच्छाओं के घोड़े पर सवार होता है। वह चहाता है कि हम यह भी कर दें, वह भी कर दें। हमारे पास यह भी हो, वह भी हो। कोई चीज दृष्टि से ओझल न हो जाए। होता नहीं सब कुछ मन की सोच के अनुसार और तब मन और विवश होता है। समाज और समाज के लोगों के साथ ऐसा सदियों से होता आया है और होगा भी, रोक पाना संभव नहीं। एक समस्या के बाद एक समस्या खड़ी रहती है। कोई कोरे आश्वासन देकर किसी को मौन रखने के लिए कबतक झूठ का सहारा लेगा, आश्वासन देता रहेगा। इसी भाव को समेटे नवगीत ही सुंदर बन पड़ा है–

काम नहीं आती है अब तो कोरे शब्दों की बैसाखी
मन से मन का रिश्ता जोड़े खोजो ऐसी वाकी–टाकी।(पृ. 142)

नवगीतकार के 'खाली हाथ कबीर' में खाली रहने के लिए कुछ नहीं है, पढ़नेयोग्य सब कुछ है। पाठक को 'खाली हाथ' नहीं रहना पड़ेगा। 'गीत के तुम बोल हो, मैं अंतरा हूँ', 'कहीं छाँव में धूप मिली तो, कहीं धूप में छाँव,' 'उड़ गये वे दिन कपूरी, हवाओं में बिन सताये', 'ठगी–ठगी है खड़ी गरीबी, लोकतंत्र के हाट

में', 'जबसे अम्मा गई, पिताजी गुमसुम रहते हैं', 'माँ की आई याद , घुल गई मन में, चंदन गंध धूप की', 'तेज धूप में, उमस भरी है, अजब दिवस है', हादसों का शहर है, जिंदगी बेखबर है', 'बँधे स्वार्थ के चक्रब्यूह में, कहा गधे को बाप', 'बाबा लिये सुमिरनी झंखै, दादी को खटवाँस', 'मिला बहुत कुछ, किन्तु समय ने, छीन लिया', 'जी रहे संवेदना का सिन्धु अंतर में बसाये', 'पड़ी अकेली रोटी बंधन, तोड़ गई दाल' आदि नवगीत पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम हैं और 'खाल हाथ कबीर' का संबल है, उत्साह है। 'खाली हाथ कबीर' में देशज और अंग्रेजी के कुछ प्रचलित शब्दों का प्रयोग पुस्तक के वातावरण में शुद्ध देहाती प्राणवायु प्रवाहित करने में सफल हुए हैं। 'काँखते–काँखते' के साथ 'रोबोट' है, तो 'बैद–हकीम' की 'दवा–दवाई' भी है।

'ठाकुरद्वारा' पर 'भौजाई' है तो 'अँगनैया' में 'तुलसी' और 'देवी मैया' भी हैं। 'आसमान टूटा' है तो 'लोहू के ढबरे' के साथ राजनीति का जमीन 'बूटा–बूटा' भी है। 'वाकी–टाकी', 'ताकाझाँकी', 'मौसी–काकी' के साथ 'घायल नागासाकी' भी है। क्या नहीं है 'खाली हाथ कबीर' के साथ। अंत में यह आशा करता हूँ कि डॉ. मधुकर अष्ठाना जी का 'खाली हाथ कबीर' पाठक का उचित स्नेह और आदर पाने में सफल होगा और नवगीत के क्षितिज पर चमकता एक 'ध्रुवतारा' होगा, जो सोते समय को एक भोर के बाद सूर्य का उजाला देने में कोई कोरकसर नहीं छोड़ेगा। पाठकवर्ग के सम्मान से सुशोभित होगा और बनेगा हिन्दी साहित्य के नवगीत विधा का एक सोपान। इति शुभम्।

नज़्म संग्रह जाहिद अबरोल
पुस्तक–खाली हाथ कबीर
रचनाकार–डॉ. मधुकर अस्थाना
प्रकाशक–गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद

समीक्षा

बेवजह यूँ ही : एक नवीन दृष्टि

अरुण अर्णव खरे
होशंगाबाद रोड, भोपाल
(मध्यप्रदेश)462026

व्यंग्य भले ही समालोचक विधा मानने से कितना ही इंकार करें, पर इस सत्य को स्वीकारना ही पड़ेगा कि हर बीतते दिन के साथ व्यंग्य विधा और मजबूत व मुखरित होती जा रही है। वर्तमान साहित्य में सबसे ज्यादा पढ़ी जानेवाली और सबसे ज्यादा छपनेवाली विधा व्यंग्य ही है। कहानी और उपन्यास लेखकों से इतर व्यंग्यकारी की एक लंबी फौज इस समय व्यंग्य लिखने में सक्रिय है। यहाँ यह उल्लेख भी महत्वपूर्ण है कि पुरुषों के वर्चस्ववाले इस क्षेत्र में आज अनेक महिला व्यंग्यकारों ने अपेन भव्य महल तान दिये हैं। कुछ समय पूर्व तक सूर्यबाला अकेली ध्वजवाहक थीं, लेकिन आज वीना सिंह, इंद्रजीत कौर, शशि पांडे, अर्चना चतुर्वेदी, मीना सदाना अरोड़ा, अनीता यादव जैसे कई नाम इस विधा में स्थापित हैं। ये भी खूब लिख रही हैं और पढ़ी भी खूब जा रही हैं।

हाल ही में वीना सिंह का व्यंग्य संग्रह 'बेजह यूँ ही' आया है। संग्रह में शामिल एक आलेख में उन्होंने स्वयं लिखा है कि ''ठीक है, न बताओ, पर इस संसार में कुछ भी बेवजह नहीं है, हर चीज की कोई न कोई वजह है।'' उनकी बात को न मानने का कोई कारण मेरे पास नहीं है–अतएव उनका यह संग्रह भी अपने नाम के बावजूद बेवजह नहीं है। एक–दो नहीं, अनेक वजहें जैं, जो इस संग्रह को विशेष बनाती हैं। सबसे पहले तो इस संग्रह में विभिन्न रुचिकर विषयों पर केन्द्रित 69 रचनाएँ हैं, जिनका फलक बहुत विस्तृत है। साथ ही इनमें उनकी वैचारिक प्रखरता, विसंगतियों की गहन पड़ताल, तीक्ष्ण कटाक्ष करने की क्षमता और मानवीय पूरी शिद्दत के साथ मौजूद है। सरल और सहज रूप से सम्प्रेषित हो सकनेवाली भाषा, कहन की विशिष्ट शैली और व्यंग्य के मान्य उपकरणों से सजा यह संग्रह हर हाल में पठनीय है।

संग्रह की पहली रचना 'हम दोनों सड़क पर' पढ़ने से यही यह आश्वस्ति मिल जाती है कि यह संग्रह कुछ मानों में अलग होगा और मन को झिझोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ेगा। इस ओलेख में वह हिन्दी और किसान की दुर्दशा को पूरी संजीदगी और दर्द के साथ उभारने में सफल रही है। 'जोड़–तोड़ है जिंदगी'–थोड़े गंभीर किस्म की रचना है। दार्शनिक अंदाज में अपनी बात सामने रखती है–'वह कहते हैं तोड़ना है हम तोड़ देते हैं, वे कहते हैं जोड़ना है, हम जोड़ देते हैं। इस जोड़–तोड़ से हमें बराबर मजदूरी मिलती रहती है और वे मालामाल होते रहते हैं।' सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर जिस तरह का तीखा प्रहार इस रचना में हुआ है, वैसा ही कुछ और रचनाओं में देखने में आता है।

'उफ् यह ठंढक' में लेखिका का यह कथन विसंगतियों पर इशारे में बहुत कुछ कहता है– 'दुकानों पर यदि कम्बल लेने जाओ तो दुकानदार का प्रश्न होता है कि बाँटने के लिए चाहिए या खुद के ओढ़ने के लिए।' इसी तरह 'उनकी अमीरी मेरी गरीबी' रचना में कभी आपने अमीरी पर गरीबी की जीत होते देखी है' गौरतलब है। 'दिया तले अँधेरा' में जो भी दिया जलता है, अपना अँधेरा अपने नीचे दबाकर रखता है। लेखिका की परिपक्व बौद्धिकता को परिभाषित करता है।

'अनलिमिटेड प्यार' में वेलेंटाइन डे पर लेखिका ने अच्छी चुटकी ली है। 'इस जुबान का क्या भरोसा'–सपाट सी पर मनोरंजक रचना है। 'दमदार बूढ़े' भाषाई फिल्म और कथन की दृष्टि से रम्य और पठनीय है। 'असमंजस में प्रभु', 'खाट विमर्श', 'मुंगेरीलाल का सपना', 'मुट्ठी भर अहसास', 'आदत से मजबूर' आदि संग्रह की अन्य अर्थपूर्ण रचनाएँ हैं। 'पगला गए हो का', 'भई पत्नी परफेक्ट हो' तथा 'जाम के पैंतरे' पढ़कर अधरों पर मंद–मंद मुस्कुराहट तैरने लगती है।

'अभी भी अनमेरिड'–में लिव इन रिलेशनशिप विषय उठाया गया है, पर रचना में विषय की संजीदगी के मान से निर्वाह नहीं हो पाया है। मुझे संग्रह में यह एकमात्र कमजोर रचना लगी।

वीना सिंह का संदर्भित व्यंग्य संग्रह संभावना जगानेवाला है। उनकी दृष्टि नवीनता लिये है और विषयों का चयन भी रुचिकर है। आगे उनसे और भी बेहतर रचनाओं की अपेक्षा की जा सकती है।

कोर पत्रिका के प्रकाशक ने इस संग्रह के साथ पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में पदार्पण किया है। पुस्तक का कवर आकर्षक है और अंदर के पृष्ठों का ले आउट और सेटिंग भी मनोहारी है। संग्रह की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

समीक्षा

ख़्वाबों के पेड़ तले

कुलदीप शर्मा,
रक्कड़ कॉलोनी, ऊना (हि.प्र.)
मो0–9882011141

ख्वाबों की अपनी एक दुनिया है, जहाँ पथरीले यथार्थ नहीं होते, उस दुनिया में ख्वाब होते हैं, ख्वाब बुनती आँखें होती हैं, ख्वाबों की दुनिया एक आदर्श दुनिया होती है। यथार्थ से सपनों तक यानी 'जैसा है' से 'जैसा होना चाहिए' तक का सफर महज़ रोमानी नहीं होता। वहीं कहीं से जन्म लेती है, उन ख्वाबों को सच में बदलने की जिद्द और जद्दोजेहद। जाने माने ग़ज़लकार जनाब जाहिद अबरोल का नज़्म संग्रह 'ख्वाबों के पेड़ तले' इसी जिद्द और जद्दोजेहद का अनिवार्य परिणाम है। मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से जाहिद अबरोल साहिब का यह वक्तव्य कि मूलत: वे नज़्म के शायर हैं, एक हैरान कर देनेवाला वक्तव्य है। हम आज तक इन्हें एक बेहतरीन ग़ज़लकार के रूप में ही जानते थे। यह भी तब जब कि ग़ज़ल की दुनिया में इनका नाम बड़े अदब और एहतराम के साथ लिया जाता है। मेरे मन में यह असमंजस कि प्रसिद्ध ग़ज़लकार अपने को नज़्म का कवि क्यों कह रहा है, जबकि मेरी राय में ग़ज़ल लिखना नज़्म से कहीं बड़ी उपलब्धि है। संरचनात्मक व तकनीक के स्तर पर नज़्म से कहीं अधिक श्रमसाध्य! पर यह सारा असमंजस जाता रहा, जब इनकी नज़्मों को मैंने एक गंभीर पाठक की तरह पढ़ना शुरू किया, तब पता चला कि नज़्म में जो ताकत है, जो भावनाओं की शिद्दत है, मन में उद्वेगों को व्यक्त करने की जो सहज और धाराप्रवाह गति है, वह शायद ग़ज़ल में नहीं या फिर ग़ज़ल में हो भी, तो भी नज़्म की स्वतंत्रता और ठाठ पर कोई आँच नहीं आती। भावनाओं की जो शिद्दत और कथ्य का जो गहन दबाव इनकी नज़्मों में है, उससे पता चलता है कि ग़ज़ल इनके लिए एक दूसरी आरामगाह या दोघरी की तरह है। भले ही वहाँ इन्होंने ज्यादा नाम और दाम कमाया हो।

फिलहाल मेरे सामने समीक्ष्य कृति की आलोचना का जोखिम है। जाहिद के पास अनुभव का जो समृद्ध दायरा है, उसमें उन्हें अपनी कहानी की तर्ज और विषय के चुनाव में कोई मुश्किल नहीं आती। ये कविता का नज़्म में अपने विषय अपने आसपास की घटनाओं या अपने भीतरी उहापोह से चुनते हैं। इनके यहाग़ज़ल कमजकम नज़्मों के परिप्रेक्ष्य में अपने काव्यानुभवों को ऐसी सटीक भाषा में ढालने का हुनर है, जो नायाब है और संभवत: दूसरे आधुनिक शायरों में कम देखने को मिलता है। इनकी इसी पुस्तक में से एक नज़्म का उद्धरण मेरी बात को और अधिक स्पष्ट करता है–

वो पुराने साँप थे
जिस जगह भी बीन बजती थी
वहाँ अज़ख़ुद पहुँच कर
बीन की आवाज से भी कीमती
अपनी जवानी को सपेरों की पिटारी में
सुलगता छोड़ आते थे।

जवानी की सुलगता छोड़ आने का जो बिम्ब है, काव्य में बहुत महत्वपूर्ण है और उनके अर्थों को एक साथ खोलता है। बीन की आवाज कीमती है, पर उससे भी ज्यादा कीमती है उनकी जवानी, जो कैद में सुलगती है। सँपेरे उस व्यवस्था का प्रतीक है, जो साँपों को नाथ कर उन्हें प्रलोभनों के मोहपाश में बाँध लेने का हुनर जानती है।

आज जबकि अधिकांश कविता केवल शब्द स्फीति का कारोबार बनती जा रही है जाहिद अबरोल की कविताओं से गुजरना एक सुखद अनुभव से गुजरने जैसा है। यहाँ ऐसी नज़्में हैं, जो अनुभव के विस्तृत आकाश और यथार्थ के जमीन के बीच जीवन्त स्पंदन का एहसास करवाती हैं। एक अनूठे काव्यानुभव से सीधे सम्वाद का सुख।

यह सँपेरों की हुनरमंदी
कि साँपों की यह कमजोरी
कभी तारीख को करवट भी तो लेने नहीं देती
न जाने कितनी सदियों ने
हर इक काबिल सँपेरे ने
न अपनी बीन बदली है न अपने सुर को ही बदला
नये युग ने पुराने दौर की कुछ टहनियाँ काटीं
उसे जड़ से नहीं काटा।

मैं जाहिद अबरोल की ग़ज़लों के मोहपाश से निकलने में असमर्थ था। इसलिए मैंने इनकी नज़्मों को दो–दो, तीन–तीन बार पढ़ा। हर पाठ में मेरा यकीन पुख्ता होता चला गया कि इन ग़ज़लों की तरह इनकी नज़्मों में भी जीवन के गहनतम अनुभवों का डायलॉग है। ये महज किसी रूमानी कौतुक या भाषाई खेल के लिए लिखी गयी नज़्में नहीं हैं। हिन्दी कवि और हिन्दी कविता का गंभीर पाठक होने के नाते मेरे लिए यह लाजमी था कि उर्दू के अल्प ज्ञान के बावजूद मुझे इन नज़्मों की मनौवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को समझना है। मुझे लगा कि यह नज़्में किसी शब्दजाल या खोखले शिल्प से उपजा काव्य प्रयास नहीं है। ये नज़्में एक गहन सृजनात्मक बेचैनी से उपजी कविताएँ हैं। यहाँ शब्द किसी वैशेषिक कलेवर में ढके सजे नहीं आते, वे अपने अर्थों की गरिमा के साथ अपने आप शालीनता और ठाठ का एहसास देते हुए नज्मों को और अधिक अर्थवान और अधिक बना देते हैं।

बार–बार दुहरायी गयी, भोगी हुई जीवन पद्धति के खुरदुरे यथार्थों से दुहे गये अनुभव काव्य रूपाकारों में सहज ही व्यक्त नहीं होते, इसके लिए वर्षों की तितिक्षा अपेक्षित होती है। जाहिद अबरोल इस तितिक्षा में तपे हुए शायर हैं।

अनुभवों को भाषा और संवेदनाओं की नई प्रतीतियों में बदलने में निष्णात जाहिद अबरोल अपनी अधिकांश नज़्मों में सपाटबानी का भ्रम पैदा करके छकाते हैं, लेकिन अगले ही पैरे में एक अप्रत्याशित काव्यबिम्ब से पाठक को चौंका देते हैं एक बानगी देखिये–

झिलमिलाते सितारों से रंगीन दामन में लिपटी हुई
आसमाँ से जमीं तक थिरकती हुई रक्स करती हुई
रात थक हार कर
नींद की सब्ज़ परियों की आगोश में
भूल जाती है जब अपने होशो हवास
दूर मशरिक से सूरज निकलता है और दस्ते बेताब से
रात का रेशमी पैरहन चीर कर
नोच लेता है कोमल सा उसका बदन
और रात अपनी इस्मत बचाने की नाकाम कोशिश में उलझी हुई
खून के अश्क रोती हुई जब सिसकती है तो दफ्तन
अपने बिस्तर पर सोये हुए मुझको यूँ लगता है
जैसे इक इक शिकन तप रही हो किसी आतशी कुर्ब से
और मेरा वजूद लम्हा लम्हा गिरांबार होकर
मिरे घर की कोमल जमीं को निगल जाएगा।

दरअसल कविता में उनके सामने दो समृद्ध भाषाएँ अपने आँचल फैलाए बैठी हैं–हिन्दी और उर्दू। नज़्म के रिवायती दायरे से बाहर आने के लिए वे जिंदगी के भोगे हुए यथार्थ की ओर लौटते हैं, पंजाब के कठिन वर्षों को रेखांकित करती त्रासदी पर उनकी नज़्म 'कहीं वो भी' अपनी प्रारंभिक पंक्तियाँ में निपट गद्य की तरह दिखती है; लेकिन थोड़ा आगे पढ़ने पर यह नज़्म उस दौर की पूरी भयावहता, विवशता, दारुण यंत्रणा और उन दिनों के पंजाब की मानसिक स्थिति

को इतनी सजीवता से उकेरती है कि पाठक बरबस उसमें घिर जाता है।

तखय्युल में बस इक धुंधला सा चेहरा है
कभी हँसता हुआ वो घर में दाखिल हो रहा है
कभी इक लाश बनकर घर की चौखट पर पड़ा है
अजब माहौल है घर में
अभी जो घर में दाखिल होगा
उसकी मौत का मातम भी जैसे हो चुका है
मिरा बेटा, मिरा भाई, मिरा खाविंद
जिंदा आ गया है
वो जिंदा आ गया है।

ग़ज़ल हो या नज़्म, एक बात तो तय है कि लीक से हटकर चलना, बँधी हुई परिपाटी को तोड़ना जाहिद के तमाम रचनाकर्म का अघोषित लक्ष्य है। खासकर नज़्म में तो वे बने बनाए रास्ते की सुविधा को छोड़कर कहने का अपना एक अलग ढंग चुनता है अनुभव में, भाषा में संवेदना में कथ्य में नवीनता जाहिद की नज़्मी का हालमार्क है, किन्तु केवल नवीनता ही कविता बनने का अचूक उपाय नहीं है। भाषा की नवीनता मात्र कविता या नज़्म नहीं हो सकती, न ही केवल संवेदना के नयेपन से कविता का रूपाकार बनता है। वह तभी बनता है, जब कुल मिलाकर यह लगे कि वास्तव में एक नई कविता का जन्म हो रहा है। कविता का यह जन्म दरअसल एक लंबी गर्भाधान क्रिया और प्रसव वेदना की माँग करता है। कवि के लिए यह वेदना कभी भीतर से आती है, कभी बाहर से। 1984 के दंगों पर लिखी यह क्षणिका जैसी छोटी सी कविता उस वेदना की साक्षी है, जिसने न जाने कितने दिन कवि को बेचैन रखा, सोने नहीं दिया।

कितना घिनौना हैवतनाक नज़ारा है
फूल से बच्चे जल्लादों के हाथों में
चीख रहे हैं सहमी हुई आवाज़ों में
अंकल हम को छोड़ दो
हम को मत मारो
हमने इंदिरा गाँधी को नहीं मारा है
कितना घिनौना हैवतनाक नज़ारा है।

इससे पता चलता है कि केवल कलफदार भाषा या वक्रोक्ति ही किसी कविता नज़्म को प्रभावी नहीं बनाती। उसके लिए संवेदना की ईमानदारी पहली शर्त है। जरूरी है कि कविता अनुभव में पगी हुई हो। जाहिद के समूचे रचनाकर्म को देखें तो उनकी सृजनात्मक क्षमताओं और काव्य सामर्थ्य का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वे ऐसे कवि हैं, जो हर बार नये प्रयोगों, नये साहस और नई दृष्टि के साथ कविता की भूमि में उतरते हैं। उनकी भाषा की बुनावट इकहरी नहीं है, न ही उनकी संवेदनाएँ एकदेशीय हैं। यह जरूर है कि कहीं–कहीं वे एक बेहद भावुक कवि की तरह पेश आते हैं, पर यह भी सच है कि वे अपने आसपास की सच्चाइयों और पेचीदगियों के साथ निरंतर मुठभेड़ करते हैं। उनके साथ रहकर उनका रचनात्मक जुझारूपन मैंने करीब से देखा है।

विचार भेद के लिए समुचित स्पेश रखते हुए भी हमारे समय की वैचारिक क्रांतियों की विफलता और आजादी की अपेक्षाओं के मोहभंग का विमर्श कराती, कार्ल मार्क्स पर लिखी उनकी नज़्म एक बेहतरीन नज़्म है।

देख इस युग में
गरीबों के लिए इन्साफ
भूखों के लिए रोटी
सुनहरे ख्वाब बनकर रह गये हैं
आज के युग में
मशीनें देवता हैं।

आजादी के बाद साठ और सत्तर का दशक भारतीय जनमानस और विशेषकर भारतीय युवा के लिए क्रूर मोहभंग का ऐसा समय था, जिसमें न केवल राजनीति की दिशा ही बदली, बल्कि साहित्यिक विधाओं के कथ्य, शैली और फेब्रिक को भी दूर तक और देर तक प्रभावित किया। सत्तर के दशक में जब जाहिद शायद युवा थे और संभवतः बेरोजगार भी, उन दिनों कार्ल मार्क्स एक फैशन की तरह प्रचलित हो रहे थे। और बहुतायत युवा किसी दूर के सपने का पीछा करते हुए साम्यवाद की राह पर चल निकले थे। उस समय भी जाहिद को भीड़ के साथ चलना या भीड़ का हिस्सा हो जाना गँवारा नहीं था। उस समय भी वे वैचारिक तौर पर एक नये रास्ते की तलाश में थे। यह रास्ता भले ही दक्षिणपंथी वैचारिकता के ज्यादा नजदीक हो पर इस रास्ते पर चलने और इसे चुनने के उनके अपने तर्क हैं।

हिन्दी कविता में यह दौर संसद से सड़क तक–धूमिल, चाँद का मुँह टेढ़ा है–मुक्तिबोध, तीसरा अँधेरा कैलास बाजपेयी, बची हुई पृथ्वी–लीलाधर जगूड़ी। केदारनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा का दौर था। काव्य रचना में बिम्ब, शिल्प और शैली को लेकर एक समानान्तर दुनिया विकसित हो रही थी। पुराने और पुरानी तकनीकें लगातार आउटडेटेड होती जा रही थीं। काव्य भाषा में एक नए का चलन चल पड़ा था।

ठीक उसी समय उर्दू की दुनिया में जाहिद अबराले 'अँधा खुदा' और 'एक सफा पुरनम' के माध्यम से अपने समकालीनों से अलग एक नई दृष्टि, नई वैचारिकता और भाषा की एक कारगर तकनीक की मदद से अपने समय की वेदनाओं, पीड़ाओं और विसंगतियों को एक ताजा स्वर से व्यक्त कर रहे थे। जाहिर है कि 'ख़्वाबों के पेड़ तले' में भी अधिकतर वो नज़्में संकलित हैं, जो उस समय लिखी गयीं।

अपनी नज़्म अँधा खुदा में वे कहते हैं कि
दिल के आँगन में धूप उम्मीदों की
जब भी टुकड़ों में बँटती जाती है
मौत उजड़े हुए ख्यालों को
थपकियाँ देके जब सुलाती है
आस के बुझ रहे चिराग की लौ
बनकर इक साँप सरसराती है
तैश खाकर खुद अपने दाँतों से
अपना ही जिस्म काट खाती है।

यूँ तो हर अच्छी कविता की विशेषता यही है कि बार–बार पढ़ी जाने पर भी उसे पढ़ने की इच्छा मन में बनी रहे। ऐसी कविता जो हर बार पढ़ी जाने पर नये–नये अर्थ दे, उसकी भाषा संवेदना हर बार नई जैसी लगे, हमारे आसपास के सत्य को नये–नये नामों से पुकारे। जाहिद की नज़्मों में यह खूबी है कि अपने रचनाकर्म में प्रयुक्त बिम्बों, प्रतीकों, उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं को वे बासी और मैला नहीं होने देते। हर बार उनमें नये अनुभव की सुगंध गमक उठती है। वे अपनी नज़्मों में पौराणिक संदर्भों को भी एक काव्यात्मक सहजता से खंगालते हैं। वे बाजार धर्मतंत्र और राजनीति को भी हमेशा कवि की तरह आँकते हैं। जाहिद की कविता न तो पारंपरिक और जदीद कविता की लय और लीक पर चलती है, न ही अक्सर दूरे गये बिम्बों का सहारा लेती है। वे अपने कथ्य के बल पर ही अपने काव्य विवेक का प्रयोग करते हैं। सौंदर्यबोध के पुरातन प्रतिमानों की जूठन उन्हें पसंद नहीं है। वे समय की क्रूरताओं चिंताओं और सरोकारों को लेकर सन्नद्ध और सचेत है।

'ख्वाबों के तले' एक बेहतरीन संग्रह की सारी शर्तों को पूरा करती है और पाठकों द्वारा अवश्य ही यह हाथों हाथ ली जाएगी, आमीन।

समीक्षा

कर्ण
मेरी दृष्टि में

शतदल मंजरी
जिला स्कूल भागलपुर
मोबाईल : 8292090406

अंगप्रदेश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. अमरेन्द्र द्वारा रचित महाकाव्य 'कर्ण' 23 सर्गों में विभक्त 256 पृष्ठोंवाली पुस्तक का अध्ययन और उसकी समीक्षा की जिम्मेदारी अपने हाथों में लेने से पूर्व घबराई कि ऐसे विद्वान के महाकाव्य की समीक्षा में कुछ कहना, शायद सूर्य को दीपक दिखाने के बराबर है; परन्तु इस पुस्तक के अध्ययनोपरांत भाषा की सहजता, सरलता एवं नायक कर्ण ने मुझे इतना आकर्षित किया कि मैं इस पुस्तक की समीक्षा के लिए विवश हो गयी।

'गेना' के बाद सन् 2018 में 'कर्ण' डॉ0 अमरेन्द्र का दूसरा महाकाव्य प्रकाशित हुआ है। पहले महाकाव्य 'गेना' की रचना से कवि एवं समीक्षक संतुष्ट हैं; क्योंकि 'गेना' में महाकाव्यत्व के साथ–साथ विचार तत्त्व और चिंतन की भी प्रमुखता देखी गई। अत: महाकाव्य अथवा प्रबंधकाव्य की दृष्टि से भी इस ग्रंथ की सफलता के बाद महाकाव्यत्व की निरंतरता एवं क्षेत्र विशेष 'अंग' के नायक 'कर्ण' के उत्थान एवं उद्धार के मोह में शायद कवि ने 'कर्ण' की रचना की है। जिसमें कवि ने महाकाव्य के समस्त अवयवों के समावेश का प्रयत्न किया है। यहाँ उन्होंने अनेक मार्मिक स्थलों का उद्घाटन भी किया है तथा कथातत्त्व को गतिशील बनाये रखने में अनेक कथोपकथनों का आयोजन भी किया है। डॉ. अमरेन्द्र ने 'कर्ण' के निवेदन में लिखा है–उन्हीं के शब्दों में ''विभिन्न संदर्भों के सहारे अंधकार में खुली आँखों से देखने का प्रयास किया है और सोते–जागते मैंने कर्ण की जो परेशानियाँ देखी हैं, उसे बुदबुदाते हुए सुना है, उन्हें बिना किसी लाग–लपेट या बदलाव के, काव्य को बाँध दिया है। कोशिश इतनी भर रही है कि कर्ण का वह रूप भी आकार ले सके, जो काव्य की शिल्पियों से अबतक छूट रहे हैं और जिसने कभी 'महाभारत' के रचयिता को महाकाव्य में 'कर्णपर्व' जोड़ने के लिए विवश किया था।

कवि के अंधकार में छिपे कर्ण रहस्य तक पहुँचने के लिए आधुनिक अंग महाजनपद के दक्षिणा छोर पर बसे धनुवाडीह का रहस्य जानने के लिए या फिर भूमराज बाबा की कथा पाठकों एवं अंग के जन–जन के हृदय में स्थापित करने की कोशिश रही है।

एक तरह से कवि के हृदय में कर्ण के लिए अत्यधिक मोह और सहानुभूति ही महाकाव्य 'कर्ण' का उद्देश्य दिखाई देता है। दूसरी तरह से 'हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का उदाहरण महाभारत के 'कर्ण' को दिया जाता रहा है। उससे इतर कवि ने महाकाव्य 'कर्ण' के माध्यम से कर्ण के केवल सद्गुणों और सद्व्यवहारों को ही हमारे सामने रखकर कर्ण के माध्यम से नयी मानवता की स्थापना का प्रयास किया है। इस महाकाव्य में कर्ण की तमाम बुराइयों को कवि ने नेपथ्य में डालकर पाठकों के हृदय में कर्ण की महान् एवं विराट छवि को स्थापित करने का प्रयास किया है।

इससे यह स्पष्ट है कि 'कर्ण' के द्वारा कवि अमरेन्द्र एक ओर उपेक्षित एवं कलंकित मानवता के मूक प्रतीक कर्ण का उद्धार करना चाहते हैं और दूसरी ओर उसके द्वारा 'नयी मानवता की स्थापना का प्रयास भी। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर 'कर्ण' महाकाव्य की रचना हुई है।

महाकाव्य की दृष्टि से 'कर्ण' को कहाँ तक सफलता मिलती है, यह विद्वान समीक्षक ही तय करेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इसमें कथा–सूत्र का सम्यक् निर्वाह, मार्मिक स्थलों का उद्घाटन, चरित्र–चित्रण, संवाद और दृश्य–विधान इत्यादि का सर्गबद्ध आयोजन हुआ है।

महाकाव्य के लिए जीवन की जिस विराटता, गंभीरता और विशदता की आवश्यकता होती है, उसका भी 'कर्ण' में कवि ने सर्वथा ध्यान रखा है। यहाँ चरित्र और कथानक वक्र रेखाओं से न उलझकर एक सरल रेखा में गमन करते हुए आगे बढ़े हैं। महाकाव्य में जो प्रयास किया गया है, वह नितांत मौखिक और व्यावहारिक है।

परन्तु किसी भी सफल महाकाव्य के लिए यह आवश्यक है कि वह युग का प्रतिबिम्ब हमारे सामने उपस्थित करे। इस दिशा में यहाँ कवि ने कोई प्रयास नहीं किया है। 'कर्ण' महाकाव्य में जिस युग का स्वर मुखरित हुआ है, वह न तो महाभारत का है और न आधुनिक युग का। ऐसा लगता है कि कवि एक साथ अतीत और वर्तमान दोनों को ऐतिहासिक और पौराणिक युगों को आत्मसात कर लेना चाहते हैं। इस कृति में जहाँ कहीं भी देव घटना का आयोजन हुआ है, वहाँ हम स्वयं को पौराणिक युग के समीप पाते हैं और जहाँ कवि कर्ण के अस्पृश्यता निवारण का पक्ष समर्थन करता है, वहाँ हम युगों को लाँघकर 'गाँधीयुग' यथार्थवाद में लौट आते हैं।

केशव, कभी दलित कुल में भी लेकर के अवतार,
यह भी जानिये कुलीन कुलों का क्या है अत्याचार
तब कहियेगा क्या अधर्म या और धर्म क्या मेरा
आँखों के आगे यह केशव कैसा घोर अँधेरा।

सत्य यही है कि इसमें न तो युग बोला है और न युग–युग की चिंतनधारा प्रवाहमान हुई है। महाकाव्य को कालजयी बनानेवाली एकमात्र शक्ति तब पैदा होती है, जब कवि की चिंतना देश और काल की सीमा का उल्लंघन कर विश्वात्मा की स्थापना में सहायक होती है। इस दृष्टि से 'कर्ण' का महाकाव्यत्व सफल होने में थोड़ा संदेह है; क्योंकि यहाँ स्थायी संदेश का अभाव है। अत: 'कर्ण' महाकाव्य की कोटि में नहीं आता है, तो इसके लिए कर्ण का चरित्र ही उत्तरदायी है। ऐसी स्थिति में महाकाव्य परंपरा के आधुनिक सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, जयशंकर प्रसाद की समकक्षता ग्रहण करना कवि के लिए मुश्किल ही नहीं दुर्लभ भी होगा।

स्पष्ट है कि अमरेन्द्रजी ने इस महाकाव्य के लिए जिस 'कर्ण' को नायक का पद दिया है, वह हमारे युग के लिए न तो उपयोगी है, न उपेक्षित ही। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कवि ने महाकाव्य 'कर्ण' में युद्ध के जिन कारणों का निर्देश किया है, उसका जीता–जागता प्रतीक 'कर्ण' का 'कर्ण' ही है। जिन्हें कवि ने महाकाव्य कर्ण में बचाने का भरसक प्रयत्न किया है। 'कर्ण' में युद्ध के कारणों और उसके स्वरूप पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है–

खांडव के जलने की बातें सुनीं कर्ण अकुलाया
कहा कुछ सुयोधन ने फिर कहाँ सुना सुन पाया।
बंद हो गई उसकी आँखें अपने आप अचानक
लगे घूमने उन आँखों में जलते दृश्य भयानक।

तब क्या नाग बचे ही होंगे खग कुल या फिर दानव
राज्य प्राप्ति का लोभ हलाहल उदधि मंथन का आसव।

सहसा तनी रीढ़ हड्डी भी कसी मुट्ठियाँ औचक
आँखें खुली कहीं पर अस्थिर औघड़ को ही त्राटक
बाँहें फड़की गहरी साँसें टेढ़ी भौंहें क्षण में
अधर अधर से दबे हुए हैं रक्तिम मुँह है प्रण में।

मुष्ठिघात जंघों पर करता रह–रहकर रविसुत है

कभी शांत तो कभी रौद्र में मेघ–अनल से युत है।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि युद्ध की संभावना तभी होती है, जब व्यक्ति मे विकारों की अग्नि शिखाएँ धधकने लगती हैं और जब मन, क्षोभ, घृणा, ईर्ष्या तथा द्वेष से भर जाता है। युद्ध की ज्वाला किसी राजनीतिक उलझन का बहाना लेकर अथवा देश प्रेम का अवलंब लेकर दो गुटों में फूट पड़ती है। 'कर्ण' का 'कर्ण' भी कुछ मामलों में कवि द्वारा चरित्र बदल देने के बावजूद भी एक ऐसा ही व्यक्ति है, जो स्वभाव से ही हठी और विचार से दृढ़व्रती है। हठ के साथ दृढ़ता का योग जीवन, समाज और सभ्यता के लिए ऐसा ही खतरा है, जो सबको मिटाकर ही दम लेता है। संसार के इतिहास में इसके अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। कर्ण के हठ का एक ज्वलंत उदाहरण निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

लेकिन कैसे छोडूँगा संकल्प अधूरा रण में
खांडव नागों के वैरी को अभी ग्रसूँगा क्षण में।
रथ का चक्का धँसा हुआ है धँसे और धँस जाए
चाहे मेरे प्राणों पर बंधन जितना कस जाए।

भीष्म–कर्ण को युद्ध से विमुख होने का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं–

कर्ण तुम चाहो तो रुक सकता समर यह
और सारे रास्ते हैं बंद अब तो
तुम तनय कुंती के अग्रज पांडवों के
कृष्ण बनकर क्या मिलेगा कौरवों के?

रवि तनय तुम, व्यास तक को यह पता है
सूत कहकर पर तुम्हारा जी दुखाया।

लेकिन कर्ण ने इस ऐतिहासिक प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसके विपरीत वह युद्ध को 'सद्धर्म' समझकर ईश्वर तक पहुँचने का एक साधन समझता है। उसने कहा–

सुन कहा था कर्ण ने यह, हे पितामह
वीरता का वंश–कुल क्या जात कैसी?
दान ही तो धर्म मेरा वंश मेरा
हे पितामह और फिर क्या अंश मेरा।

दे दिया है दान जीवन कौरवों को
अब कहाँ इस पर मेरा अधिकार कुछ भी।

कर्ण की युद्ध–लिप्सा में हमें अंग्रेजों के 'क्रूसेड' और मुसलमानों के 'जेहाद' की स्पष्ट प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। इन बातों से स्पष्ट है कि कवि डॉ. अमरेन्द्र ने 'कर्ण' में युद्ध के जिन सैद्धांतिक कारणों पर प्रकाश डाला है, उनकी व्यावहारिक सच्चाई की पुष्टि कर्ण–चरित्र के द्वारा कर दी गयी है। इस तरह हम कह सकते हैं कि अगर कवि का 'कर्ण' युद्ध–संबंधी सिद्धांत पक्षधर हैं, तो 'कर्णचरित्र' उसका व्यवहार पक्ष। कवि 'कर्ण' में कर्ण को अपने हृदय की संवेदना और सहानुभूति देकर स्वयं का जैसे उसको प्रवक्ता बना दिया है।

मरना तो मरना हे सबको, सबको प्राण गँवाना
उसी मृत्यु की खातिर क्यों छलका ताना–बाना
केशव सब पर काल खड़ा है अलग अलग नामों से
अभिधा ही है सत्य यहाँ पर सौ–सौ उपमाओं से।

इन पंक्तियों से हमें सर्वत्र प्रकृति के पुरुष का बोध अवश्य होता है; लेकिन समाज में इस प्रकृति के मनुष्य का वास्तविक महत्व नहीं होता। विवेक के अभाव में भावनाशून्य प्रतीत होता है। कर्ण के चरित्र का सबसे बड़ा दोष यही है कि वह विवेकहीन है। ऐसा उपेक्षित, हठी और कलंकित व्यक्ति मानवता का प्रतीक कैसे हो सकता है, जो भगवान् श्रीकृष्ण का कहना नहीं मानता, भीष्म पितामह और कुंती तक का कहना नहीं मानता और अपने ही पिता सूर्य की आकाशवाणी अनसूनी कर अपना कवच– कुंडल दान देता है और महाभारत के संग्राम में अनावश्य बल और पराक्रम दिखलाता है। कर्ण में ऐसा एक भी प्रसंग नहीं आया, जिसमें पीड़ित मानवता, दरिद्र और दुखियों को दान देता हुआ दिखाया गया हो। सच तो यह है कि अमरेन्द्रजी ने 'महाभारत' के कर्ण से महाकाव्य 'कर्ण' के कर्ण से संबंधित ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है, जो उसके चरित्र को दीन बनाती है। उस व्यक्ति को आदर्श पुरुष कैसे कहा जा सकता है, जो भगदत्त की पुत्री भानुमती को स्वयंवर में जीतकर दुर्योधन को सौंप देता है। वृषाली और पुनरनवी का पति होने के बावजूद मन से कृष्ण के प्रति आसक्त होता है। दुर्योधन जैसे व्यक्ति की हर तरह से सहायता कर अपने को धन्य समझना उसके तथाकथित आदर्श पर प्रश्नचिह्न लगता है। इसके अतिरिक्त कार्य जो इसकी हीनता को दर्शाता है, वह युद्धवीर महाराज जरासंध को द्वंद्वयुद्ध में पराजित कर उसके प्रसिद्ध नगर मालिनी अर्थात् चंपा को अपने राज्य अंगदेश में मिला लेता है। वीर धनुर्धर कर्ण को भीष्म पितामह द्वारा केवल 'अर्द्धरथी' कहे जाने पर भीष्म से वैर बदला चुकाने की सोचना कहाँ की आदर्शवादिता है?हालाँकि कर्ण में उक्त दोनों प्रसंगों का उल्लेख नहीं हुआ है; क्योंकि कवि कर्ण के चरित्र को ऊपर उठाना चाहता है और कल्पना एवं साक्ष्य के आधार पर मिले गंगाजल से इस 'सूतपुत्र' का उद्धार करना चाहता है।

'कर्ण' के सारे प्रयत्न प्रारंभ से अंत तक सिर्फ एक व्यक्ति, अर्जुन से खांडव वन जलने के प्रतिशोध में द्वंद्वयुद्ध और उसे परास्त करने की दिशा में किये गये हैं। वह स्वयं कहता है–

चाहे जो भी हो लेकिन है पार्थ यहाँ अपवाद
रण में गूँजेगा उसके हित करे धनु का नाद।
उसने राज्य विभव वैभव हित जो भी किया है पाप
उसे छोड़ सकता है कैसे मेरा खुलता शाप।

परन्तु केशव कर्ण की सारी चतुराई पर पानी फेर देता है। जहाँ केशव ने कर्ण को संसार के इतिहास में सबसे बड़ा युद्धवीर घोषित किया है, वहीं इस धर्मपुत्र को अधर्म का साथ निभाने की सजा भी देते हैं–

जितनी देर रहे केशव थे वहाँ कर्ण के पास
खड़ी रही कुछ दूर मृत्यु ही शीतल सा आभास।

यहाँ हठी कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना में बाधक है। संपूर्ण कर्ण में कर्ण का व्यक्तिगत शोध कर्ण के व्यक्तित्व को हीन दर्शाता है। प्रारंभ से अंत तक इसी प्रतिशोध की भावना क्रमशः ज्यादा कभी मन में जागृत होती रही है। तेईस सर्गों वाली दो सौ छप्पन पृष्ठों की इस मोटी पुस्तक में कई जगह पर ऐसा दिखाया गया है, जहाँ कर्ण ने मानवता की पूर्ण रक्षा की है। दलितों की भावनाओं को वाणी दी है। परन्तु उसके द्वारा कार्य करता हुआ कहीं नहीं दिखाया गया है, जो उसकी पूर्ण मानवता की रक्षा में सहायक सिद्ध हुआ है।

कर्ण के चरित्र का सबसे प्रभावशाली अंश वहाँ प्रकट हुआ है, जहाँ वह दैव और नियति को ललकारता है। उस स्थल पर कर्ण की आंतरिक वीरता और मनुष्योचित चरित्र का व्यक्तित्व अधिक निखरा है, इन्द्र द्वारा कवच और कुंडल माँग लिये जाने पर कर्ण अपनी कर्मठता का परिचय देते हुए कहता है–

पूर्वजों की रीति को रखा जुगाकर
इसलिए तो कवच–कुंडल का किया है दान
मैं पला जिस भूमि पर जन्मा जहाँ में
कर सके मुझपर हमेशा देश का वह अभिमान।

क्या हुआ जो कवच–कुंडल से रहित हूँ
मैं अभी भी वह कि जिससे काँपता है काल
है अभी भी मुट्ठी में सारी दिशाएँ
काँपते नरपति दिशा के काँपते दिक्पाल।

कर्ण के चरित्र का यह रूप अधिक आकर्षक है, जो हमें कर्मशील जीवन का अमर संदेश देता है। इस प्रकार अमरेन्द्र रचित 'कर्ण' के द्वारा हमें कोई स्वस्थ संदेश नही मिलने के बावजूद भी 'कर्ण को हमारी आत्मा में प्रतिष्ठित करने का प्रयास है।

समीक्षा

मानवीय मूल्यों का पैरोकार
सवाल सिर्फ शब्द नहीं

वरुण प्रभात
लक्ष्मीनगर, मानगो, जमशेदपुर
9934370219

'सवाल सिर्फ शब्द नहीं' शीर्षक कविता संकलन समीक्षा प्रकाशन मुजफ्फरपुर (नई दिल्ली) से प्रकाशित शैलेन्द्र अस्थाना की पहली संकलित पुस्तक है। यह विश्वास कर पाना किसी भी पाठक के लिए थोड़ा असंभव है। चूँकि मैं शब्द के जादूगर, सिद्धहस्त कवि शैलेन्द्र अस्थाना का गाँव से भी पड़ोसी हूँ और उनके निवास शहर से भी, क्रम यहीं नहीं रुकता जनवाद के इस मुखर विचारक का मैं आलोचक भी हूँ और आत्मीय भी इसलिए मुझे स्वीकार करने में तनिक भी गुरेज नहीं कि नई कविता की धारा में बढ़ियाई नदी की तीव्र चाल लिये शैलेन्द्र अस्थाना शीर्ष कवियों में शुमार हो चुके हैं। 'सवाल सिर्फ शब्द नहीं' देर आए दुरुस्त आए की तर्ज पर हृष्ट–पुष्ट, स्वस्थ–संतुलित एवं पठनीय हैं। यह संकलन कई मायनों में उदार, यथार्थ के पुट समेटे, समय की गति को संवाद के जरिये नई दिशा का भान कराता है। इसपर यह आक्षेप भी हो सकता है कि यह संकलन आम पाठक के लिए नहीं, बल्कि खास एवं बुद्धिजीवी वर्ग को संबोधित है। मैं इस बात से हतप्रभ नहीं हूँ कि शैलेन्द्र अस्थाना की कविताएँ समय को चुनौती देती है और जो समय चल रहा है, उसमें चुनौती का पर्याय सिर का कलम कराना है। शुक्र है, इन पंक्तियों के बावजूद शैलेन्द्र अस्थाना पूरी सजीवता एवं संजीदगी के साथ हमारे बीच हैं।

बिन लादेन जिन्दा है अभी
यहाँ–वहाँ हर जगह
संसद से सड़क तक
दफ्तर से बिस्तर तक।

आश्चर्य इन सरल सीधे शब्दों ने पूरे विश्व के परिदृश्य के कठघड़े में लाकर खड़ा कर दिया है। आतंक का पर्याय बिन लादेन भारत से लेकर अमेरिका तक के प्रधानों के जिस्म में रूह बन पैठा है। नतीजा सामने है।

इस संकलन की भूमिका नवगीत की शीर्षस्थ हस्ताक्षर और मेरी अत्यन्त प्रिय डॉ. शान्ति सुमन ने लिखा है। पहली नजर में तो सहसा मैं चकित हो उठा भूमिका लेखक के तौर पर उनका नाम देखा कि मुलायम गीतों से जनमानस की बात करनेवाली, मेंहदी, नूपुर, गोरैया, हवा, पानी, नदी, झरन, बच्चे–बूढ़े से संवाद करनेवाली, गेहूँ की बाली, सरसों की फूली क्यारियों और मरहना धान की खेतों में आमजन की खुशियाँ तलाशनेवाली, उनकी पीड़ा को गीतों में ढाल सजीवता प्रदान करनेवाली पथराई आँखों में सपने बोनेवाली, आखिर इस उजाड़, बीहड़, कंकड़ीले रास्तों की सहभागिनी क्योंकर बन गई? लेकिन जब भूमिका को पढ़ा एक बार नहीं, कई बार, तब इस विदुषी को गुनने का मन हुआ। कवयित्री ने शैलेन्द्र अस्थाना की बेचैनियों में भी एक मधुर राग ढूँढ़ लिया है। उसके आक्रोश में भी संवेदना का सूरज उगा लिया है। हालाँकि जनवाद को स्वीकारते हुए जनवादी का विरोध उनकी आत्मीयता का एक सशक्त प्रमाण बन गया है।

इस संकलन में पहली कविता का शीर्षक भी 'पहली कविता' है, जो इसे रोचक बना रहा है।

हुआ होगा/ आदम और हौवा को/ अपने होने का/ एहसास।
ऐसे ही/ जनमी होगी/ सृष्टि की/ पहली कविता।

खुद को महसूसने की कला ही तो कविता है। संवेदना अंकुरित होती है, तब कहीं जाकर अपने होने का भान होता है और जहाँ यह एहसास जन्म लेती है, कविता वहीं से फूटती है।

दस बाई दस के
सीलन भरे बंद कमरे में
आत्मनिर्वासित मैं
अलसाया, उदास, ऊबा
आजिज हो–टाँग दी
कुछ कविताएँ दीवारों पर
और भर्राये मन से
लगा निरखने।

आधुनिकता की होड़ और मशीनीकरण के इस युग में शहर क्या गाँव भी कमोबेश कवि द्वारा इंगित इस पीड़ा को झेल रहा है। शेष यादें, जो भी कभी–कभी बालकनी और रोशनदान पर अदृश्य गोरैया बन चहचहा उठती हैं, कवि ने इस पीड़ा को शब्द के साँचे में ढाल उत्कृष्ट रूप दिया है। कवि का मानना है कि कविता खुला आकाश है, जरूरत है अपने डैने को उड़ान की दिशा बताने की कुछ भी जुदा नहीं, आपमें कविता–कविता में आप!

इस संकलन की सबड़े बड़ी खासियत यह है कि इसकी कोई भी कविता ओझल नहीं हो सकती, ना ही उसे नजरअंदाज किया जा सकता हैं। शैलेन्द्र अस्थाना बखूबी जानते हैं कि उनकी कविताएँ उनके विरुद्ध खड़ी होती हैं, जो साम्प्रदायिक, कुटिल, जातिवाद, क्षेत्रवाद की राजनीति करनेवाले और पूँजीवाद के समर्थक तथा रुढ़िवादी है। साथ वे इस बात से भी परिचित हैं कि मार्क्स, लेनिन या कामरेड का चोला पहने कुछेक घुसपैठिये जो मनुष्यता के लिए घातक है, उन्हें पहचानने में उनकी दृष्टि धोखा नहीं खा रही।

दोस्त! सेवाओं से कतराओ नहीं, टकराओ
सवाल/ समय के अक्स होते हैं
सवाल सिर्फ शब्द नहीं होते
और न इनकी हद
मसले के सरहद से तंग होती है
मित्र! सवालों के बारे में/ हमेशा संजिदा रहो।

इस कविता में कवि ने एक मुक्कमिल इंसान की कल्पना की है, परन्तु सवालों का यह घेरा, जिससे टकराकर कई चेहरे बेनकाब हो रहे हैं। कवि का सीधा इशारा बहुरूपियों पर है। यूँ तो संकलन की किसी भी कविता को कमतर नहीं आँका जा सकता, लेकिन 'मेरे शहर' शीर्षक कविता, जिसका वर्णन कवि ने भी 'अपनी बात' में की हैं, चलचित्र की भाँति घूम जाता है। कवि का आतुर मन इस दमघोंटू व्यवस्था को न जाने कितनी बार भोगा होगा, कितनी बेचैनियों से गुजरा होगा, कितनी बार स्वयं को भी कठघरे में खड़ा किया होगा, तब कहीं 'मेरे शहर' जैसी कालजयी रचना का जन्म हुआ होगा।

''मेरे शहर : / तुम्हारे भव्यता का भान/ तब होता है
जब चमकती कारों के/ कतारों के बीच मासमूल हाथ
तमाकू की पुड़िया, खिलौने/ नकली सामान या
ऐसा कुछ/ बेचने की होड़ में/ अपना बचपन
घिसटता हुआ/ कहीं दूर छोड़ आये होते हैं।''

''मेरे शहर, महानगर/ तुम बहुत बड़े हो
क्योंकि किसी भी बदबू आती गली को/ साँस रोके
पार करते–करते/ दम फुल जाता है/ और

गंधाती हवा पी लेता हूँ।''

''यह दिगर है कि कुछ स्कूलों में/ अघाये पेट में
टॉफियाँ ठूँसी जाती है/ और शेष में/ बच्चे पाठ
याद करते–करते/अपनी भूख भूल जाते हैं।''

''क्या फर्क होगा/ तुममें और देश में/
तुम ही बढ़ते–बढ़ते देश हो गये होगे/ या
देश सिमटते–सिमटते शहर/ कोई फर्क नहीं।''

इन तमाम पंक्तियों में लेखक की पीड़ा अभिव्यक्त होती हैं। चुनिंदे वादों के घेरे में फाँसते, अर्धनिंद्रित आँखों में ख्वाब सजानेवाले पाहुन से हमसफर के लिए बचैन हो लिखता है–

मुझे बदशक्ल उजालों ने
ठगा है/ भटकाया है/ राजपथों ने।

कितनी बेबाकी से सच के दर्पण को लेकर आमजन, शोषित, पीड़ित की बात कह जाता है। शैलेन्द्र अस्थाना की कविताओं में जीवन के वे तमाम मूल्य मिल जायेंगे, जिससे दो–चार होकर मनुष्यता स्वयं को आँक सकती हैं।

मैं चाहता हूँ
उस लड़की के लिए
एक गीत बनाना, जो सामने के होटल में
नाचने आती है।

'उस लड़की के लिए' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ सिर्फ शब्दों का भँवरजाल या लेखक की कोरी कल्पना नहीं है। यह यथार्थ का वह चित्र है, जिसकी कल्पना मात्र रोंगटे खड़े कर देते हैं।

''और अंत में जब
अपना आखिरी लिबास उतारती है
तो क्या उसे नहीं लगता होगा कि
वह मनुष्यता की आखिरी पहचान को
नोचकर फेंक रही है।''

इन पंक्तियों में, इस कविता में लेखक ने मनोचिकित्सक की भाँति नृत्यांगना की मानसिक स्थितियों का सजीव विश्लेषण किया है। मेरा मानना है कि किसी घटना का चित्रण कर देना मात्र कविता नहीं है। कविता संवेदना/ शिल्प को परिलक्षित कर मनोविज्ञान की अनुभूतियों को आत्मसात करनेवाली यह नदी है, पाठक/श्रोता के मस्तिष्क के रास्ते होते हुए हृदयतल नामक सागर में मिलकर उफान भरती हैं। शैलेन्द्र अस्थाना की कविताएँ समुद्र की वह गर्जन है, जिसकी गूँज शंख की भाँति अस्तित्व तक बनी रहती है। सत्ता के चौकड़ीबाजों का केन्द्र दिल्ली, जहाँ से अब केवल राजनीतिक भविष्य ही नहीं, साहित्यिक भविष्य का भी फैसला होता है, को लेखक ने 'दिल्ली' शीर्षक कविता में बखूबी चित्रित किया है। आम जन के माध्यम से सच का द्वार खोल वास्तविक परिदृश्य को पटल कर रख सावधान होने का संकेत देती यह कविता अंतशः में पैठ जाती हैं। कवि की दृष्टि आधुनिकता को ढोल पीटती इस सामाजिक विडंबनाओं पर औरत को केन्द्र में रख करारा प्रहार करती है।

बुरे वक्त में/ पैदा होती है लड़कियाँ या
और खुद–अरहर के डंठल–सा कड़कड़ाती बच जाती है
अपने वजूद और/ देह के साथ–औरतें या
बोझ गट्ठरों का नहीं जीवन का
घर आँगन की धरती का सँभाले
गाती–खिलखिलाती
झुकती–तनती सँभलती बार–बार
पहाड़ी पगडंडियों पर साँझ ढले
संगीत के अवरोह सा
चलती चली जाती हैं
ये पहाड़ी लड़कियाँ।

इन सारी पंक्तियों में, कविताओं में नारी के प्रति लेखक के सशक्त संवेदना उद्वेलित होती हैं। औरत की मनोदशा, उसके संघर्ष, उसकी सामाजिक स्थिति को बिम्बों के जरिये करुण चीत्कार का चित्रण लेखक का ध्येय नहीं है। लेखक कोमल मनोभाव का चित्रण भी ईमानदारी से करते हैं।

सच/ किसी पुराने प्रेम पत्र के/ अक्षर सा/
लगती है मुझे/ ये पहाड़ी लड़कियाँ।

इस संकलन में सिर्फ संवेदना की हिलोर ही नहीं है, व्यंग्य का धार भी है, जो प्रहार करता है, खंजर की भाँति सीधे– सीधे विक्षिप्त मानसिकता पर, संकीर्ण सोच पर, राजनीतिक हलकानों पर। 'संदर्भ भगत सिंह', 'अच्छे दिन ठिठके हुए', 'स्वर्ग में भीष्म और दुःशासन', 'मुझे नहीं चाहिए स्वर्ग', 'ये कैसा युद्ध' आदि कविताएँ व्यंग्य की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में शामिल होने योग्य हैं। इस संकलन की कविताओं में लेखक का पूरा संघर्ष छनकर बाहर आता है। नचिकेता, सलाम–सलाम–सलाम, तुम सोचते नहीं, खतरनाक समय जैसी कविताओं से गुजरते हुए स्पष्ट हो जाता है कि लेखक गहन तिमिर के छँटने का इंतजार नहीं करता, बल्कि वह सूरज उगाने की बात करता है। मेरी दृष्टि में कविता शब्दों का भँवरजाल या एक्का, बेगम, बादशाह की पत्तियाँ नहीं हैं। जिसे जब चाहे खेल के नाम अनुरूप शीर्ष पर रख दें। कविता सच और केवल सच की हिमायती हैं। वह मजदूरों की हिमायती है, वह शोषकों की हिमायती है, वह पीड़ितों की हिमायती है। वह जीवन की हिमायती है। पाठक को इस संकलन में कविता के वह सारे स्रोत मिलेंगे, जो वर्तमान के कंधे पर सवार भूत का दर्पण के लिए भविष्य को कालजयी बनाती हैं। शैलेन्द्र अस्थाना की कविताएँ सड़क का दृश्य है, बाजार की ऊहापोह है, बस आँखें खुली रखनी है, सच को महसूसनेवाले नब्ज को जीवंत रखना है। आप पाएँगे कि उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं लिखा, जो कल्पना लीक से अवतरित हुई हो....उनका संघर्ष, उनका प्रेम सब कुछ धरातल का है। हमारे–आपके बीच का है।

प्रेम शायद उर्वर जमीन में
छुपी नमी के एहसास जैसा कुछ होता है
जिससे फूटते हैं/ अँकूए खिलखिलाते हुए।

वही शृंगार की एक दूसरी कविता 'आया बसंत' मनोविनोद का एक रास रंग छेड़ जाता है। अपनी बात कहूँ तो इस संकलन की कविताओं में सच से जुझते–जुझते जब, 'आया बसंत' शीर्षक कविता पर दृष्टि गई, तब लगा कि कवि शृंगारिक पक्ष की कलाबाजियों को अंगीभूत करना चाहता है, परन्तु आगे बढ़ने 'शाम' 'मेरा गाँव एक स्वप्न चित्र' और 'चुप्पी' जैसी कविताएँ यह संकेत दे जाती है कि कवि का आत्मिक पक्ष समाज की जड़ों में इस कदर धँसा है कि उनकी कुलबुलाहट मात्र से संवेदना का सोता फूट पड़ता है और कवि रचता है, कुछ ऐसा, जो सोचने पर विवश पर देता है कि क्या वाकई 'सवाल सिर्फ शब्द होते हैं?' इस संकलन में आत्ममूल्यांकन का जीवन को समझने का एक अद्‌भुत नजरिया है, इसे अंगीभूत कर एक स्वच्छ समाज का निर्माण किया जा सकता है।

पुस्तक समीक्षा

कई-कई बार होता है प्रेम

कविता–संग्रह

अरुण शीतांश

हमारे सामने प्रतिष्ठित युवा कवि अशोक सिंह का कविता संग्रह 'कई–कई बार होता है प्रेम' मेरे हाथ में है। समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर और हमारे हमउम्र मित्र कवि अशोक सिंह की कविताओं पर मेरी नजर उनके आरंभिक लेखन से पड़ती रही है। इससे पहले की उनकी दो अनुदित किताबें, जो संताली से हिन्दी अनुवाद में आई हैं, वह राष्ट्रीय स्तर पर काफी चर्चित रही हैं। वे किताबें हैं– 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' और 'अपने घर की तलाश में'। ये संग्रह क्रमशः भारतीय ज्ञानपीठ और रमणिका फाउंडेशन दिल्ली से प्रकाशित हैं। इन दो अनुदित कविता संग्रहों से गुजरने के बाद अशोक सिंह की कविता के प्रति गहरी समझ का पता तो चलता ही है, अनुवाद जैसे कठिन व महत्वपूर्ण कार्यों में उनकी मजबूत पकड़ का भी एहसास होता है। अशोक सिंह की रचनाएँ देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रमुखता से प्रकाशित होती रही हैं। इतना ही नहीं इनकी कविताओं का बंगला, मराठी, उड़िया, भोजपुरी, संताली, बोडो, नेपाली व पंजाबी आदि भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। इनकी एक अनुदित कविता एन.सी.ई.आर.टी के हिन्दी पाठ्यपुस्तक की ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ाई जाती है। विभिन्न संस्थानों से जहाँ एक ओर अपनी साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए अशोक सिंह कई बार पुरस्कृत व सम्मानित हो चुके हैं, वहीं दूसरी ओर अपनी शोध पत्रकारिता के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एन.एफ.आई. दिल्ली से नेशनल मीडिया फेलोशिप अवार्ड और राज्य स्तर पर झारखण्ड सरकार का झारखण्ड मीडिया फेलोशिप अवार्ड भी उन्हें प्राप्त हो चुका है।

उनके कविता संग्रह 'कई–कई बार होता है प्रेम' पर बात करें तो, उनके इस संग्रह में उनके जीवन के कई रंग हैं, जो उनकी कविता के भीतर से झाँकते हैं। विविध रंग–रूपों में रची–बसी उनकी कविताओं में प्रमुख कविताएँ हैं–माँ की दुनिया, जवान होती लड़कियाँ, दुख में तुम्हारी हँसी, मैं तुमसे इसलिए प्रेम नहीं करता, जब तुम मेरे पास होती हो, एक पेड़ की तरह थी तुम मेरे लिए, तुम्हारी आँखों से दुनिया देखना चाहता था, माफ करना बाबू, स्वीकारता हूँ मैं, हमारे जाने के बाद, सिर्फ तुम तक सीमित नहीं है मेरी दुनिया, बस का इंतजार करती लड़की, यातना और प्रेम की अँधेरी सुरंग से निकली स्त्री, उठो काली औरतो गाओ कोई गीत, यूँ भी मरते हैं हम, एक सभागार में बुद्धिजीवि, यह चुप रहने का वक्त नहीं है, एक दुश्मन दोस्त के साथ रहते हुए और कई–कई बार होता है प्रेम। वैसे तो मुझे इस संग्रह की तमाम कविताएँ अच्छी लग रही हैं, लेकिन इस संग्रह की श्रेष्ठ कविताओं में एक कविता है 'बहनें और घर' जिसमें अशोक सिंह कहते हैं कि बहनें गीली लकड़ियों से भी/बना लेती हैं घर की रसोई/अँधेरे में भी टटोल लेती हैं माचिस की डिबिया/वे जानती हैं/तेज हवा से बचाना/संझोती का दीया/और बता सकती हैं सूर्य का रुख देखकर/लगभग ठीक–ठीक समय/कितने सधे हाथ हैं उनके/बिना दर्पण टीप लेती हैं/नाक की सीध में मांग/और लगा लेती हैं माथे पर बिंदी/वे होती हैं माँ के हाथ/पिता की आँखें/घर की ताजा हवा/घर से विदा होने तक नहीं जानती वे/कि उन्हीं से यह घर–घर था। इस तरह का विम्ब अन्य कवियों में बहुत ही कम दिखाई देता है। अशोक सिंह की दृष्टि बहुत ही पैनी और संवेदना बहुत ही गहरी है। वे स्त्री, पेड़, प्रकृति आदिवासी जीवन व सामाजिक चेतना से लैस कवि हैं और इसी कारण वे हमारे बीच के एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में स्थापित हैं। उनकी एक कविता है 'जवान होती लड़कियाँ' जिसमें वे कहते हैं– ''जवान होती लड़कियाँ जानती हैं/उसके समय का सबसे खराब समय चल रहा है यह/यह भी जानती हैं/कि एक ऐसे समय में जी रहे हैं वे/जहाँ खतरनाक होता है मुस्कुराना। इसी तरह की एक और कविता है 'बस का इंतजार करती लड़की' बस का इंतजार करती लड़की/बस पड़ाव पर बैठी/उलट रही है पत्रिका के पन्ने/उसका वक्त काटे नहीं कटता/यह जो उसकी पिता की उम्र का आदमी/अखबार की ओट से घूर रहा है/उधर खड़े चार लड़कों ने कभी क्या लड़की देखी नहीं/एक दो पुलिसवाले होने चाहिए इस जगह पर/नहीं–नहीं पुलिसवाले भी तो...।

अशोक सिंह की कविताएँ पढ़कर हमें एक सुखद अनुभूति होती है, मन को बैचेन भी करती हैं कि आखिर इस सुंदर होती दुनिया में इतनी हिंसा और अशांति क्यों है?ऐसा लगता है हम अपनी नैतिक जिम्मेदारियों, अपनी परंपराओं, रीति–रिवाजों और संस्कारों के प्रति सकारात्मक सोच को विकसित करने में कहीं न कहीं बहुत पीछे हैं। तब हर घर में संयुक्त परिवार होते थे लेकिन पिछले कुछ दशकों से हम एकल परिवार में तब्दील होते जा रहे हैं। जहाँ दादा–दादी, नाना–नानी, मामा–मामी, मौसियाँ सब के सब पीछे छूटते जा रहे हैं। ऐसे में हमारे दादा–दादी, नाना–नानी कब हमारे बीच से चुपके से चले जाते हैं, पता भी नहीं चलता। 'दादी का जाना' कविता में कवि कुछ ऐसा महसूस करता है– यह सच है कि/हमारी दादी का इस दुनिया से जाना/कोई नई बात नहीं है/कितनों की दादी–नानियाँ चली जाती हैं/कितनों की चली जायेंगी धीरे–धीरे/पर हमारी दादी का जाना/सिर्फ दादी का जाना नहीं है/दादी के साथ चले गये ढेर से किस्से/ढेर सारी लोकोक्तियाँ, मुहावरे चौपाइयाँ चली गयी दादी के साथ/चली गयी चार आने सेर मिठाई के जमाने की बातें। अशोक सिंह अपनी कविताओं में जो भाव रखते हैं, वह बहुत ही सरल व सहज तरीके से रखते हैं। इनकी भाषा और शब्दावली में कहीं कोई भाषायी बोझिलता और बौद्धिकता का प्रदर्शन नहीं दिखता। निःसंदेह अशोक सिंह जैसा संवेदनशील व लोक–जीवन से गहरे जुड़ा हुआ कवि ही शायद ऐसा कह सकता है। आज जो कविताएँ लिखी जा रही हैं, वह कल्पना और यथार्थ को लेकर, लिखी तो जा रही हैं, लेकिन उसमें 'कविता' कम 'कवि' ज्यादा बोलता दिखाई देता है। वैसे में अशोक सिंह की सरल, सहज व तरल कविताएँ हमें आश्वस्त ही नहीं करती, बल्कि एक 'कविता' के अंदर 'कविता में प्रवेश' करने का अवसर भी प्रदान करती हैं। वे शब्दों के साथ बड़ी सहजता से खेलते हैं और बड़े सलीके व आहिस्ते से उसे अपनी कविताओं में रख देते हैं। कविता में उनका यह शब्दानुशासन देखते ही बनता है।

अशोक सिंह की एक कविता है–'अपना घर' जहाँ वे कहते हैं–स्याही सोखता की तरह सोख लेता है/हमारी पीड़ा और थकान/मेरी आँखों में होता है वह/और उसकी आँखों में होता है/मेरे लौटने का इंतजार/कहीं भी जाओ/ठीक तीसरे दिन बहुत याद आता है अपना घर/यहीं से शुरू/और अंततः यहीं आकर/ समाप्त होती हैं सारी यात्राएँ/कहीं भी जाने की हमारी कोशिश/ समाप्त हो जाती है यहाँ लौटकर/चाहे जहाँ भी हो/जैसा भी हो/ दुनिया की सबसे खूबसूरत जगह है/अपना घर।''

अशोक सिंह की कविताओं को मुख्य रूप से हम इस रूप में देख सकते हैं कि वह स्त्रियों के प्रति बहुत ही आसक्त हैं। साथ ही बहुत ही सजग व संवेदनशील भी। वे स्त्रियों के प्रति सहज आकर्षित तो होते ही हैं, स्त्रियों की पीड़ा, उसके अंदर का दर्द और उसके मनोविज्ञान को भी बखूबी समझते हैं। उसके अंतर्द्वन्द्वसे लेकर उसके रंग–रूप, उसके संघर्ष और उसके अकेलेपन तक को लेकर भी वे चिंतित रहते हैं। उसके अंदर जो मन की बातें हैं, उसमें झाँकने की कोशिश तो वे करते ही हैं, उसके दुख–दर्द, शोषण व संघर्ष को भी बड़ी मुखरता व प्रखरता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। चूँकि अशोक सिंह अपने संस्थान के माध्यम से आदिवासी इलाकों में रहकर, आदिवासियों के बीच, आदिवासियों के लिए काम करते हैं और

उनके सामाजिक सरोकारों से जुड़े हैं। इसलिए उनके बीच रहते हुए उनकी चीजों को, उनकी दिनचर्या व संघर्ष को शिद्दत से महसूस करते हैं।''उठो काली औरतो गाओ कोई गीत/बड़े फरेबी ये परदेसी/तन के गोरे, मन के काले/लगा न इनसे प्रीत/इस काली अँधेरी रात में/मिलकर गाओ कोई गीत। कवि कहना चाहता है, काली औरतों को सचेत करना चाहता है कि जो गोरे लोग हैं, उनका मन गोरा नहीं है। वह मन से बहुत काले हैं। इसलिए उनसे कभी प्रीत मत लगाना। फिर आगे कहते हैं– सुनो! नगाड़ा बज रहा/पर्वत के उस पार/कहीं संकट में है मीत/इस काली अँधेरी रात में/मिलकर गाओ कोई गीत।

अशोक सिंह अपनी सरलता व सहजता में हमारे बीच के एक बेहतरीन कवि हैं। इसलिए हमें उनके संग्रह का स्वागत करना चाहिए। अकेली औरत, काली लड़की और आदिवासी स्त्रियों के साथ–साथ बस का इंतजार करती लड़की और हॉस्टल के लड़के पर भी उनका ध्यान जाता है। जहाँ वे कहते हैं कि हॉस्टल के लड़के/रोटियाँ बेलते चकले पर/बना रहे हैं पृथ्वी का मानचित्र/गोल करने की कोशिश में/सवार रहे हैं तवे पर/अपना–अपना भविष्य/ अपनी माँ के अरमान/और पिता के लाठी हैं वे। अशोक सिंह आशा और उम्मीद की कविताएँ लिखते हैं/हमेशा सकारात्मक सोच के साथ सामाजिक सरोकार से जुड़ा सृजन करते हैं और वह भी पूरे लेखकीय जिम्मेदारी के साथ। अपने आसपास की चीजों और दृश्यों को वे बड़ी सूक्ष्मता व जीवंतता से उजागर करते हैं। तभी तो वे कहते हैं कि–वे जानते हैं/पृथ्वी का पूरा भूगोल/सभ्यता के विकास का इतिहास/विश्व की सबसे छोटी और बड़ी चिड़िया का नाम/और तो और अपने शहर से ज्यादा/इंग्लैंड और अमेरिका के बारे में जानते हैं वे/पर अपने शहर को/बस मोटामोटी काम चलाने भर तक जानते हैं वे। इस संग्रह में इस तरह और भी कई कविताएँ हैं, जिसपर बात की जा सकती है और अपने समय की समकालीन कविताओं में अशोक सिंह के योगदान को देखा–परखा जा सकता है।

इनकी एक बहुत ही प्यारी कविता है जिसका शीर्षक है 'मैं तुमसे इसलिए प्रेम नहीं करता'। बहुत ही अच्छी और संवेदनशील कविता। जिसमें वे कहते हैं– मैं तुमसे इसलिए प्रेम नहीं करता/कि मैं तुम्हारे प्रेम में पड़कर अंधा हो जाऊँ/बल्कि इसलिए करता हूँ तुमसे प्रेम/कि तुम्हारी आँखों से दुनिया देख सकूँ। और इसी क्रम में फिर आगे वे कहते हैं कि मैं तुमसे इसलिए नहीं करता प्रेम/कि अपना सब कुछ लुटाकर/तुम्हारा सब कुछ हासिल कर सकूँ/बल्कि इसलिए करता हूँ प्रेम/कि तुमने ही यह कह कर पढ़ाया/प्रेम का सच्चा पाठ/कि प्राप्ति प्रेम की समाप्ति है/और सच कहूँ तो/मैं तुम्हें पाकर तुम्हें खोना नहीं चाहता! आज समकालीन कविता में प्रेम पर जितने भी कवि लिखे रहे हैं, उनमें बहुत थोड़े से कवियों में 'अशोक सिंह' भी हैं, जो प्रेम कविताओं की भीड़ में अपनी सरलता, सहजता के साथ–साथ, अपनी भाषा–शैली में, अपनी संवेदनाओं, अपनी स्मऋतियों और कल्पनाओं की महीन बुनावट के लिए जाने जाते हैं।

चूँकि अशोक सिंह झारखण्ड जैसे आदिवासी क्षेत्र से आते हैं, इसलिए आदिवासियों के सामाजिक–सांस्कृतिक संकट और उनके राजनीतिक आंदोलनों के प्रति भी वे बहुत ही सजग व संघर्षरत रहे हैं। अपनी कविता 'बूशी सोरेन के लिए' जिसमें वे कहते हैं–''आप गाँधी हो सकते थे झारखण्ड के/मंडेला भी हो सकते थे आप/और कुछ नहीं तो/संपूर्ण क्रांति के महानायक/ झारखण्ड के जेपी तो ही सकते थे/अगर जंगल पहाड़ों को छोड़/दिल्ली नहीं गये होते/गये तो गये/वहाँ जाकर सत्ता की कुर्सी पाने खातिर/अपने संघर्ष व आदिवासीयत को/गिरवी नहीं रख दिये होते/और तो और पुत्र मोह में पड़कर/झारखण्ड के राजनीतिक महाभारत में/धृतराष्ट्र नहीं बन गये होते।'' यहाँ अपने झारखण्ड आंदोलन के अगुवा दिसोम गुरू शिबू सोरेन को कवि झारखण्ड के गाँधी के रूप में देखना चाहता था, लेकिन राजनीतिक छल छद्म और स्वार्थ के मकड़जाल में फँसकर उनके जीवन में आई गिरावट से कवि हताश व निराश हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप कवि अपनी इस कविता में एक आधे–अधूरे जन नेता के पूरे सच को सामने रखता है।

अशोक सिंह की कविताएँ आम आदमी की कविताएँ हैं और आम आदमी के इर्द–गिर्द ही घूमती नजर आती हैं। उनसे ही वाद–विवाद और संवाद करती दिखती हैं। एक कविता है 'छोटे लोग' उसमें कवि कहना चाहता है कि छोटे लोग अक्सर फुटपाथ पर चलते हैं, फुटपाती कपड़े पहनते हैं और हमारे जीवन की आपाधापी में हमारे लिए, हमारी तमाम जरूरतों के लिए, हमेशा हमारे आसपास मौजूद रहते हैं। वह नीचे बैठकर भाषण सुनते हैं, लाइन में लगकर टिकट लेते हैं। इसलिए देश के अच्छे और सच्चे लोग 'छोटे लोग' भी हैं और ऐसे ही मेहनतकश ईमानदार छोटे लोगों से हमारा देश बचा हुआ है। छोटे लोगों से देश के बचने का मतलब है, राष्ट्र का बचना। इसलिए छोटे लोगों के प्रति हमेशा हमें कृतज्ञ रहना चाहिए। कविता की चंद पंक्तियाँ देखिए– छोटे लोग/भीड़ में तख्तियाँ उठाए लगाते हैं नारे/और अपनी छोटी–छोटी माँगों के लिए/अक्सर मारे जाते हैं जुलूस में/बड़े लोगों की गोली से। और इसी कड़ी में अंतिम पंक्ति है– और तो और/छोटे लोग अक्सर डरते हैं/बड़े लोगों से/लेकिन जब वे डरना छोड़ देते हैं/तो डरने लगते हैं उनसे बड़े–बड़े लोग।'' जन सरोकार और जनपक्षधरता का भला इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है!

कुछ इसी तरह की उनकी एक और कविता है 'जब भूख पर चर्चा होगी' कविता में कवि कहता है–जब भूख पर चर्चा होगी/तब रोटी का जिक्र आयेगा ही/जब हम रोटी की बात करते हैं/तो जाहिर है/हम भूखे लोगों के पक्ष में खड़े होकर/अघाये लोगों से बहस करते हैं/अघाये लोगों का तर्क है/कि रोटी पर बहस करना/रोटी की राजनीति करना है/अगर यह सच है/तो मैं ऐसी राजनीति के पक्ष में हूँ/अब देखना है कि हमारे पक्ष में कौन–कौन हैं?भय, भूख और भ्रष्टाचार के इस भयावह समय में कवि भूखे, नंगे व शोषित पीड़ित लोगों के साथ खड़ा अपनी पक्षधरता की स्पष्ट घोषणा करता है।

अशोक सिंह की एक बहुत ही महत्वपूर्ण और उत्कृष्ट कविता है 'अकेली औरत' जिसमें कवि शहर में रह रही एक अकेली औरत की मनोदशा का बड़ा ही मार्मिक व प्रभावी चित्रण ने किया है। कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए–अकेली औरत/उस सुनसान सुंदर हवेली की तरह होती है/जो भीड़–भरे शहर की आखिरी छोर पर खड़ी/अपनी नक्काशियों पर रोती है/लोग कहते हैं/जिस गली से गुजरती है/वह गली तक हो जाती है अकेली और उदास/अकेली औरत के अकेलेपन में कोई देवता नहीं होते। फिर आगे की कुछ पंक्तियाँ–वह आईने से डरती है/आईना भी डरता है उससे/उसकी उम्र दीवार में लगे पलस्तर सी/झड़ती है रह–रहकर....। अद्भुत और अनोखा बिम्ब, जिससे कविता को ऊँचाई तो मिलती ही है, उसमें गहराई भी आती है। आगे की कविताओं में कुछ और नया देखने–समझने की कोशिश करते हैं, तो उनकी कई और कविताएँ हमारा ध्यान खींचती हैं, जिसकी चर्चा यहाँ जरूरी समझता हूँ। टूटा हुआ आदमी, बिछुड़े हुए लोग, कभी न आनेवाली ट्रेन की प्रतीक्षा में, सभागार में बुद्धिजीवी, यह चुप रहने का वक्त नहीं है आदि। 'टूटा हुआ आदमी' जिसमें वे कहते हैं– सारे जमाने से हो जाती है विरक्ति इतनी/कि रिश्ते–नाते सब के सब लगने लगते हैं झूठे/एक कबाड़खाने की तरह लगती है दुनिया/उसके पास होता है एक टूटा हुआ दिल/जिसमें होते हैं ढेर सारे टूटे फूटे सपने। फिर आगे वे कहते हैं–गंभीरता की चादर ओढ़/वह अपने भीतर के एकांत में टहलता है अक्सर/और पार्क की आखरी बेंच/या किसी सुनसान सड़क की पुलिया पर बैठ/करता है घंटो खुद से बातें/सभागार की सबसे पिछली सीट पर/अक्सर अनामंत्रित की तरह बैठता है वह/और दर्ज कराता सभा में अपनी उपस्थिति/अनुपस्थित रहता है बहस से। इस कविता में एक टूटे–बिखरे आदमी का संक्षिप्त एकालाप दिखाई पड़ता है। वक्त और हालात से टूटे–बिखरे एक आदमी की मनोदशा का इतना जीवंत और मर्मिक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

इस संग्रह की अंतिम कविता है 'पीले पड़ते प्रेम–पत्र' जिसमें कवि कहता है– जैसे–जैसे उधर/पीले पड़ते जा रहे हैं/तुम्हारे पास रखे मेरे प्रेम–पत्र/वैसे–वैसे इधर/आने लगी है मेरे बालों में सफेदी। बालों का सफेद होना एक परिपक्वता का प्रतीक है। वह बाल जो धूप में नहीं पका, बल्कि जीवन के ताप से तपा और प्रेम में

जीवन की तलाश में पका है। आदमी के भीतर का प्रेम उम्र के साथ–साथ बढ़ता जाता है, उसके भीतर प्रेम पाने की लालसा युवावस्था से भी ज्यादा तीव्र हो जाती है। यह प्रेम कच्ची उम्र के आकर्षण से अलग तरह का प्रेम है, जिसमें उफनती नदी का आवेग नहीं, एक ठहरे हुए शांत समुद्र की गहराई है और नीले आकाश की ऊँचाई। जिसे देखने–समझने का अपना–अपना नजरिया है। तभी तो वह कहता है–जैसे–जैसे ऊधर/धुंधली पड़ती जा रही है/उसकी लिखावट/वैसे–वैसे इधर/धुंधलाने लगी है मेरी स्मृतियाँ/जैसे–जैसे उधर टूटने लगे हैं उसके तह/वैसे–वैसे इधर टूटने लगा हूँ अंदर से मैं भी/जबतक वे बचे रहेंगे तुम्हारे पास/शायद तबतक मैं भी/बचा रहूँ इस धरती पर।

इस तरह अशोक सिंह की तमाम कविताएँ जहाँ एक ओर जीवन और प्रेम के प्रति अपनी बनती बिगड़ती मनोदशा को व्यक्त करती हैं, वहीं दूसरी ओर जीवन में प्रेम को और प्रेम में जीवन को विभिन्न कोणों से देखने–दिखाने की कोशिश भी करती हैं। निःसंदेह अशोक सिंह की कविताएँ लौकिक जीवन में, भौतिक और दैहिक प्रेम के आकर्षण से बँधी दिखाई देती हैं लेकिन व्यवहारिक जीवन के खुरदुरे यथार्थ को भी बड़ी सच्चाई और ईमानदारी के साथ व्यक्त करती हैं। जिसमें न तो कहीं शब्दों का आवरण है और न ही आदर्शवाद की थोथी दलीलें। हो सकता है प्रेम को आदर्शवाद के साँचे में ढालकर देखने–दिखानेवाले लोगों को इस पुस्तक का नामकरण ही कुछ अटपटा लगे और इसकी कविताएँ भी शायद गले न उतरे, यहाँ तक कि कवि के प्रति एक अलग तरह का नजरिया ही बना ले लेकिन इस पुस्तक से गुजरते हुए यह बात पूरे विश्वास से कही जा सकती है कि व्यावहारिक जीवन में प्रेम को ओढ़ने–बिछानेवाले लोग, प्रेम में बार–बार छले जाने के बावजूद प्रेम पाने की लालसा रखनेवाले लोग, इससे अवश्य अपना जुड़ाव महसूस करेंगे। इस पुस्तक के बारे में समग्रता से एक वाक्य में कहें तो यह पुस्तक जीवन में प्रेम और प्रेम में जीवन की तलाश करता एक कवि की काव्य यात्रा है।

ओ सरहद पर मिटनेवालो नमन तुझे सौ बार है

–महेन्द्र प्रसाद 'निशाकर'
भागलपुर
7903561848

ओ सरहद पर हँस–हँस के
मिट जानेवाले वीर सपूतो
सीने पर गोली खा–खा के देश की
लाज बचानेवाले वीर जवानो
है तुझसे हरी–भरी यह धरती
हमारा हरा–भरा संसार है
मेरा नमन तुझे सौ–सौ बार है
मेरा नमन तुझे सौ–सौ बार है

अपने देश की सीमा की रक्षा में
तूने भरी जवानी कर दिया अर्पण
शीश चढ़ा के बलिवेदी पर तूने
गरम लहू का कर दिया तर्पण

अपना सर्वस्व न्योछावर कर दी तूने
जिससे हिन्द की हरियाली है
मेरा नमन तुझे सौ–सौ बार है
मेरा नमन तुझे सौ–सौ बार है

है धन्य तुम्हारी जननी
जिसने तुझको जन्म दिया
शान तिरंगे का मेरे यारो
तूने कभी घटने न दिया।

तुझसे हरी–भरी है भारत की जमीं
हम भारतवासी को तुझसे प्यार है।
मेरा नमन तुझे सौ–सौ बार है
मेरा नमन तुझे सौ–सौ बार है

विश्वम्भर व्यग्र पांडे,
गंगापुर सिटी, राजस्थान,
9549165579

इस युग की कहानी

गांधी की अहिंसा शास्त्री की सरलता
किताबों में रह गई है सिर्फ कहानी
राजा और प्रजा भटके हैं दोनों
कर रहे हैं अपनी अपनी मनमानी
स्वार्थ है हावी राष्ट्र को है हानी
झूठ–प्रपंच की सबने राजनीति मानी
यहाँ योग्य सड़कों पर भटकते मिलेंगे
अयोग्यता बनी रानी मिले राजधानी
व्यभिचार बढ़ा है इतिहास गढ़ा है
नहीं रहा अब हमारी आँखों में पानी
फूट में लूट किया अकूत
मिले चाहे कैसे भी कुर्सी सुहानी
रिश्ते हैं लड्डू और जमता है पानी
यही है जुवानी इस युग की कहानी।

आलेख

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) पर विशेष

आकांक्षा यादव
अलीगंज, लखनऊ–226024
मो.–09413666599

समकालीन परिवेश में नारी विमश ि

नारी विमर्श, नारीवाद, नारी अस्मिता, नारी स्वातंत्र्य, नारी सशक्तिकरण जैसे तमाम विषय आज पूरी दुनिया में गंभीर बहस का विषय है।इन पर अकादमिक से लेकर राजनैतिक स्तर तक और घरेलू से लेकर सामाजिक और आर्थिक स्तर तक बहसें हो रही हैं। औपचारिक से लेकर अनौपचारिक स्तर तक चल रही इस पहल ने नारी के भीतर एक नई शक्ति और संभावनाओं के नए युग की शुरुआत की है। इसने जहाँ नारी के भीतर अधिकारों की लौ जलाई है, वहीं उन्हें अपने अधिकारों के लिए सतत संघर्ष करना भी सिखाया है। कभी अरस्तू ने कहा था–"स्त्रियाँ कुछ निश्चित गुणों के अभाव के कारण स्त्रियाँ हैं।" तो संत थॉमस ने स्त्रियों को "अपूर्ण पुरुष" की संज्ञा दी थी, पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऐसे तमाम सतही सिद्वान्तों का कोई अर्थ नहीं रह गया एवं नारी अपनी जीवटता के दम पर नए आयाम गढ़ रही है।नारी आज न सिर्फ सशक्त हो रही है, बल्कि लोगों को भी सशक्त बना रही है।

वैश्विक स्तर पर देखें तो नारी विमर्श का उदय पश्चिम में हुआ माना जाता है। पाश्चात्य दार्शनिक और विचारक एच.टी. मिल तथा जे.एस.मिल ने सर्वप्रथम निबंधों की एक सीरीज प्रकाशित की, जिसमें कहा गया कि स्त्रियोचित तथा पुरुषोचित गुणों का विकास सामाजिक परिवेश पर निर्भर करता है। वास्तव में स्त्रियों की सामाजिक पराधीनता को समाप्त करना आज के दौर में सबसे आवश्यक है।उन्हें सामाजिक और आर्थिक अवसर तथा शिक्षा उपलब्ध कराना ही सही अर्थों में न्याय दिलाने में उपयोगी साबित होगा।कालांतर में नारी विमर्श ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर सामाजिकता के साथ–साथ आर्थिक स्वतंत्रता को भी दर्शाया।उसके बाद उग्र नारीवाद आया।इसमें यह कहा गया कि पुरुष द्वारा स्त्री का शोषण सर्वत्र और हर समाज में होता है। वहीं प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिमोन द बोउआर ने कहा–"स्वाभाविक तौर पर स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसमें लिंगभेद की चेतना पैदाकर उसके स्त्री होने का अहसास कराया जाता है।स्त्री–पुरुष समता में शरीर न तो बाधक है, न बंधक।समाज की मनोवृत्ति में बदलाव किये बिना विमर्श के लाभ को पूरी तरह प्राप्त करना संभव नहीं है।"

नारियों को अपनी पहचान बनाने लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। 1900 के आरंभ में 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' मनाने की शुरुआत हुई थी।वर्ष 1908 में न्यूयार्क के एक कपड़ा मिल में काम करनेवाली करीब 15 हजार महिलाओं ने काम के घंटे कम करने, बेहतर वेतन और वोट का अधिकार देने के लिए प्रदर्शन किया था।इसी क्रम में 1909 में अमेरिका की ही सोशलिस्ट पार्टी ने पहली बार नेशनल वुमन–डे मनाया था। वर्ष 1910 में डेनमार्क के कोपेनहेगन में कामकाजी महिलाओं की अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस हुई, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला दिवस मनाने का फैसला किया गया और 1911 में पहली बार 19 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। उस समय इसका प्रमुख ध्येय महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिलवाना था; क्योंकि उस समय अधिकतर देशों में महिलाओं को वोट देने का अधिकार नहीं था।इसे सशक्तिकरण का रूप देने हेतु लाखों महिलाओं ने रैलियों में हिस्सा लिया। 1911 में ही महिलाओं के अधिकार के लिये लड़नेवाली नेन्सी एस्टर, ब्रिटिश संसद की पहली महिला सासंद बनीं। जैसे–जैसे महिलाएं मुखर होती गई, आंदोलनों दायरा भी बढ़ता गया। 1917 में रुस की महिलाओं ने, महिला दिवस पर रोटी और कपड़े के लिये हड़ताल पर जाने का फैसला किया।यह हड़ताल भी ऐतिहासिक थी।अंततः जार ने सत्ता छोड़ी और अन्तरिम सरकार ने महिलाओं को वोट देने के अधिकार दिये। उस समय रुस में जुलियन कैलेंडर चलता था और बाकी दुनिया में ग्रेगेरियन कैलेंडर।इन दोनों की तारीखों में कुछ अन्तर है।जुलियन कैलेंडर के मुताबिक 1917 की फरवरी का अंतिम रविवार 23 फरवरी को था, जबकि ग्रेगेरियन कैलैंडर के अनुसार उस दिन 8 मार्च था।इस समय पूरी दुनिया में (यहाँ तक कि रूस में भी) ग्रेगेरियन कैलैंडर चलता है।तबसे विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के प्रति सम्मान, प्रशंसा और प्यार प्रकट करते हुए 8 मार्च को महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उपलब्धियों के उपलक्ष्य में महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है।

यद्यपि नारी आंदोलन और विमर्श की जड़ें पाश्चात्य देशों में खोजी जाती हैं, पर भारत में भी आरंभ से ही इसके सूत्र मिलते हैं। भारतीय संस्कृति में नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वह शिव भी है और शक्ति भी, तभी तो भारतीय संस्कृति में सनातन काल से अर्धनारीश्वर की कल्पना सटीक बैठती है।शास्त्र से लेकर साहित्य तक नारी की महत्ता को स्वीकार किया गया है, "यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता।" सिंधु संस्कृति में भी मातृदेवी की पूजा का प्रचलन परिलक्षित होता है।नारी का कार्यक्षेत्र न केवल घर, बल्कि सारा संसार है।प्रकृति ने वंश वृद्धि की जो जिम्मेदारी नारी को दे रखी है, वह न केवल एक दायित्व है, अपितु एक चमत्कार और अलौकिक सुख भी है।इन सबके बीच नारी आरंभ से ही अपनी भूमिकाओं के प्रति सचेत रही है। 'नारीवाद' या 'फेमिनिज्म' के रूप में नारी द्वारा अपने अधिकारों के लिए की जानेवाली लड़ाई सदियों पुरानी है। भारतीय संदर्भ में देखें तो हमारे वेद और ग्रंथ नारी शक्ति के योगदान से भरे पड़े हैं। विश्ववारा, अपाला, लोमशा, लोपामुद्रा तथा घोषा जैसी विदुषियों ने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना करके और मैत्रेयी, गार्गी, अदिति इत्यादि विदुषियों ने अपने ज्ञान से तब के तत्वज्ञानी पुरुषों को कायल बना रखा था।नारी को आरंभ से ही सृजन, सम्मान और शक्ति का प्रतीक माना गया है। जब गार्गी याज्ञवल्क्य के साथ संवाद करती है, तो कहीं–न–कहीं वह नारी अस्मिता और इसके सशक्तिकरण की लड़ाई लड़ रही होती है।इसी प्रकार जब शकुंतला, दुष्यंत द्वारा न पहचाने जाने पर उन्हें भला–बुरा कहकर वहाँ से लौटने लगती है, तो वो भी वहाँ अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही होती है।महाभारत काल में जब द्रौपदी भरी सभा में अपने अपमान पर वहाँ उपस्थित लोगों से धर्म का अर्थ पूछती है और अपने पतियों को धिक्कारती है, तो वहाँ भी एक तरह का नारीवाद है।नारी ने जब–जब आवाज उठाई, उसकी आवाज को कुंद करने का प्रयास किया गया; लेकिन उसका संघर्ष भी उतना ही पुराना है।पश्चिम में भले ही उसे 'नारीवाद' नाम मिल गया हो; लेकिन स्त्री की अपनी अस्मिता, अस्तित्व और अधिकारों की ये लड़ाई प्रायः हर देश–काल में मौजूद थी और सदियों पुरानी है।

नारी मुक्ति आन्दोलन से नारी ही प्रथमतः जुड़ी, जिसकी अभिव्यक्ति उसके लेखों, नारों इत्यादि में दिखायी देती है। लिंगीय विभेद के प्रश्न को उठानेवाली प्रथम पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तक सिमोन द बोउआर (जीम`मबवदक`मग . 1949) थीं। अस्तित्ववादी विचारों की पोषक बोउआर ने स्त्रियों के विरुद्ध होनेवाले अत्याचारों और अन्यायों का विश्लेषण करते हुए लिखा, "पुरुष ने स्वयं को विशुद्ध चित्त (ठमपदह.वित. पजेमसरू स्वयं में सत्) के रूप में परिभाषित किया है और स्त्रियों की स्थिति का अवमूल्यन करते हुए उन्हें "अन्य" के रूप में परिभाषित किया है व इस प्रकार स्त्रियों को "वस्तु" रूप में निरूपित किया गया है। बोउआर का मानना था कि स्वयं स्त्रियों ने भी इस स्थिति को स्वीकार कर लिया। 19वीं सदी की महान नारीवादी ब्रिटिश लेखिका वर्जीनिया वुल्फ की 'ए रूम ऑफ

वन्स ओन' से लेकर तस्लीमा नसरीन की 'औरत के हक में', हिंदी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की 'आज की नारी' और प्रभा खेतान की 'बाजार के बीच, बाजार के खिलाफ' जैसी तमाम पुस्तकें नारी विमर्श को बढ़ावा देती हैं। वृंदा करात की 'भारतीय नारी संघर्ष और मुक्ति', इतालवी पत्रकार और लेखिका ओरियाना फेलेसी की 'एक खत अजन्मे बच्चे के नाम', तथा जेस्मिन लोरेंस की 'महिला श्रमिक : सामाजिक स्थिति एवं समस्याएँ', ऐलिन मोर्गन की 'नारी का अवतरण' जैसी तमाम पुस्तकें स्त्री समाज के विभिन्न आयामों को उनके परिवेश के साथ प्रतिबिंबित करती हैं और उनका विश्लेषण करती नजर आती हैं। व्यापक सरोकार को समेटे इन तमाम कृतियों के केंद्र में स्त्री का संघर्ष और अस्मिता है। ये न तो नारेबाजी में उतरती हैं, न किसी हवालोक में जाकर कोई आदर्शवादी चित्र प्रस्तुत करने की राह पकड़ती हैं। उनके पास खुद के भोगे गए यथार्थ अनुभव और अपने परिवेश की घटनाओं की पूँजी है, जिससे नारी विमर्श आकार लेता है।

नारीवादी विमर्श किसी एक कालखण्ड से बँधा हुआ नहीं है, बल्कि यह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अतीत का विश्लेषण करता है। भारतीय सभ्यता–संस्कृति में भी यह स्त्री की ऐतिहासिक अवस्थिति को पहचानने की कोशिश करता है। स्त्री की पीड़ा यह है कि उसे अपनी बात कहने का हक ही नहीं दिया गया। जब स्त्री ने कुछ कहने की सोची, तो उसे उसके दायरे में कैद कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्री की रचनात्मकता और वैचारिकता का प्रस्फुटन ही उसकी मानसिक पीड़ा और समस्या बन गई। इससे स्त्री के अंदर का छुपा सच समाज के सामने नहीं आ पाया। यह भी सोचने का विषय है कि जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति के लिए नारे लगाए जाते हों, वही दूसरी ओर स्त्री को अपनी बात भी कहने का अधिकार न हो। स्त्री की वेदना का अनुभव संसार कितना बड़ा है, लेकिन हमेशा उसे सामाजिक पटल पर आने से रोका जाता रहा। भारतीय संस्कृति में एक ओर स्त्री को देवी मानने का आदर्श रहा है, तो दूसरी ओर पुरुष प्रधान सत्ता के तहत स्त्री को अधीनस्थ बनाए रखने का यथार्थ भी। तभी तो डॉ. राम मनोहर लोहिया जैसे विचारक स्त्री को परतंत्र बनानेवाली विभिन्न शक्तियों और उनके आपसी संघात को देखते हैं और मानते हैं कि स्त्री की स्थिति जैविक रुप से एक खास शारीरिक इकाई होने का ही प्रतिफल नहीं, बल्कि स्त्री की परतंत्रता, जाति, वर्ग, धर्म जैसे कारकों का भी प्रतिफल होती है। धर्म और संस्कृति के सहारे पितृसत्ता स्त्री के एक स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व होने की संभावनाओं को नष्ट करती रही है। अभी भी तमाम धार्मिक स्थलों पर नारी के प्रवेश को लेकर तमाम बंदिशें हैं। हिंदू समाज में उसी स्त्री को आदर्श माना गया, जो मनसा–वाचा–कमर्णा पति की अनुगामिनी रही हो। निर्गुण रूप में वह स्त्री को देवी मानता है, सगुण में दासी। लोहिया कहते हैं कि पुरुष स्त्री को प्रतिभासम्पन्न और बुद्धिमती भी बनाना चाहता है और उसे अपने कब्जे में भी रखना चाहता है। दूसरे शब्दों में कहें, तो आज के दौर में पुरुष को ऐसी स्त्री चाहिए, जो अपने कौशल में तो अंग्रेज स्त्रियों की तरह हो; लेकिन भारतीय संस्कृति यानी पुरानी पितृसत्ता की संवाहक भी हो।

भूमंडलीकरण के बाद के प्रभावों, प्रतिफलों, सरोकारों और चिंताओं से नारी विमर्श भी अछूता नहीं रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति कई बार नारी को एक आब्जेक्ट के रूप में पेश करती है, जिसे केवल उपभोग करना है, मानो उसकी कोई भावना ही नहीं। ऐसे में पाश्चात्य सभ्यता के समर्थक कुछ लोगों को नारी स्वतंत्रता का रास्ता दैहिक वर्जनाओं को तोड़ने और उन्मुक्तता में दिखा। महिलाओं को बाजार में उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री में लुभाने के अंदाज के कारण भी यह स्थिति उत्पन्न हुई। कई समकालीन विद्वान स्त्री की अस्मिता और स्वतंत्रता को उसकी यौन स्वतंत्रता की परिधि में ही सीमित रखने की रूढ़ि के शिकार हैं। समाज का एक बड़ा वर्ग अब स्वीकारता है कि स्त्री को 'सेक्स' का पर्यायवाची बनाकर 'यौन प्राणी' मात्र बना दिया गया अर्थात पुरुष को विषयी, निरपेक्ष व स्वायत्त रूप में एवं स्त्री को विषय, अन्य, सापेक्ष व पराधीन रूप में माना गया। इस प्रकार एक चेतन वर्ग द्वारा दूसरे चेतन वर्ग को अधीनता प्रदान की गयी और दूसरे वर्ग ने अपनी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार स्त्री–पुरुष में एक द्वैत की स्थापना की गई है। एक विचारक के शब्दों में, "पुरुषों की नैतिकता महज सेक्स तक सीमित है, लेकिन स्त्री की नैतिकता को उसके व्यवहार से जोड़ दिया गया है।" ऐसे में मॉरल–पुलिसिंग के नाम पर नैतिकता का समस्त ठीकरा महिलाओं के सिर पर थोप दिया जाता है। समय–समय पर महिलाओं के वस्त्र–चयन को लेकर, शिक्षा, घूमने–फिरने इत्यादि को लेकर नियम बनाये जाते हैं। कई बार तो सुनने को भी मिलता है कि महिलाएँ अपने पहनावे से ईव–टीजिंग को आमंत्रण देती हैं, मानो वे सेक्स ऑब्जेक्ट हों। इन दोनों छोरों के बीच नारी अपनी अस्मिता के लिए दोहरा संघर्ष करती है। आज नारी अपने अस्तित्व और अस्मिता दोनों के प्रति सजग हो रही है।

नारी अस्मिता एक व्यापक शब्द है, जिसमें वह एक तरफ तो घरेलू मोर्चे पर लड़ती है, वहीं घर से बाहर भी उसे अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़नी होती है। वस्तुतः उसका यथार्थ जीवन इतना कटु है कि उसके अपने सपने कब खत्म हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। अपनी अस्मिता की तलाश भी वह कल्पना लोक में ही करती रहती है। तभी तो सिमोन द बोउआर ने कहा था–"नारी का बड़बड़ाना भी उसका विरोध दर्ज करना है।" यह अनायास ही नहीं है कि नारी स्वातंत्र्य के नाम पर चल रहे तमाम आंदोलनों और विमर्शों को कई बार परम्परागत मूल्यों के विपरीत बताते हुए अराजक तक कह दिया जाता है। नारी की प्रगतिशील प्रवृत्ति को भी कई बार स्वच्छंदता मान लिया जाता है या फिर स्वच्छंदता की आड़ में स्वतंत्रता पर बंधन लगाने की मानसिकता भी कार्य करती है। वस्तुतः स्वतंत्रता, स्वच्छंदता नहीं है, बल्कि यह एक मर्यादा के भीतर अपने अधिकारों का सम्यक् प्रयोग और कर्तव्यों का संतुलित निर्वहन है। नारी समाज का एक वर्ग ऐसा भी है, जो अभी भी सिर से पाँव तक पूरे कपड़े पहने अपनी बौद्धिकता और जीवटता के दम पर समाज की रूढ़िगत वर्जनाओं को तोड़ने का साहस रखता है। वस्तुतः भूमंडलीकरण के दौर में नारी अपनी शिक्षा एवं सजगता के चलते जहाँ आत्मविश्वास हासिल कर रही है, वहीं घरेलू उत्पीड़न, उपभोग्यता और उपयोगिता से मुक्ति के साथ–साथ अपनी स्वतंत्र अस्मिता व अस्तित्व के प्रश्न को एक नये सिरे से उठा रही है। स्त्री के इतिहास और मिथक में चित्रित रूपों से, अतिरंजना की परत को हटाकर नारीवादी विमर्श उसके यथार्थ को प्रस्तुत करता है।

आज नारी जीवन के हर क्षेत्र में कदम बढ़ा रही है। वह अपने कर्तव्यों को गृहकार्यों की इतिश्री ही नहीं समझती है, बल्कि अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति भी सजग है। वस्तुतः समाज की यह पारंपरिक सोच कि महिलाओं के जीवन का अधिकांश हिस्सा घर–परिवार के मध्य व्यतीत हो जाता है और बाहरी जीवन से संतुलन बनाने में उन्हें समस्या आएगी, बेहद दकियानूसी लगती है। आज एक महिला घर में अकेले जितना कार्य करती है, उसका मोल कोई नहीं समझता। पुरुष इसे महिला की ड्यूटी मानकर निश्चिन्त हो जाता है। यह उस स्थिति में भी है जबकि महिला भी कमा रही होती है। आज जरूरत इस बात की भी है कि जी.डी.पी. में महिलाओं के कार्य की गणना हो और घरेलू कार्यों को हवा में न उड़ाया जाय। इस अवधारणा को बदलने की जरूरत है कि बच्चों का लालन–पोषण और गृहस्थी चलाना सिर्फ नारी का काम है। यह एक पारस्परिक जिम्मेदारी है, जिसे पति–पत्नी दोनों को उठाना चाहिए। इस बदलाव का कारण महिलाओं में आई जागरूकता है, जिसके चलते वे अपने को दोयम नहीं मानतीं और कैरियर के साथ–साथ पारिवारिक–सामाजिक परम्पराओं के क्षेत्र में भी बराबरी का हक चाहती हैं। अब वे स्वयं के प्रति सचेत होते हुए अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठाने का माद्धा रखती हैं।

फेमिनिस्ट आन्दोलनों ने नगरीय जीवन में पली–बढ़ी महिलाओं पर तो प्रभाव डाला पर इधर जो एक नई प्रवअत्ति उजागर हुई है, वह है ग्रामीण अंचलों की अशिक्षित महिलाओं द्वारा रूढ़िवादी वर्जनाओं को तोड़कर नये प्रतिमान स्थापित करना। श्मशान में जाकर आग देने से लेकर महिलाएँ वैदिक मंत्रोच्चारण के बीच पुरोहिती का कार्य करती हैं और विवाह के साथ–साथ शांति यज्ञ, गृह प्रवेश, मुंडन, नामकरण और यज्ञोपवीत भी करा रही हैं। राजनीति, प्रशासन, समाज, उद्योग, व्यवसाय, विज्ञान–प्रौद्योगिकी, फिल्म, संगीत, साहित्य, मीडिया, चिकित्सा,

इंजीनियरिंग, वकालत, कला–संस्कृति, शिक्षा, आई.टी., खेल–कूद, सैन्य से लेकर अंतरिक्ष तक नारी ने छलांग लगाई है। नारी की नाजुक शारीरिक संरचना के कारण यह माना जाता रहा है कि वे सुरक्षा जैसे कार्यों का निर्वहन नहीं कर सकतीं। पर बदलते वक्त के साथ यह मिथक टूटा है। महिलाएँ आज पुलिस, सेना, और अर्द्धसैनिक बलों में बेहतरीन तैनाती पा रही हैं। अब जागरूक नारी समाज की अवहेलना करना आसान नहीं रहा। आज वह स्वयं को सामाजिक पटल पर दृढ़ता से स्थापित करने को व्याकुल है। शर्मायी–सकुचायी सी खड़ी महिला अब रूढ़िवादिता के बंधनों को तोड़कर अपने अस्तित्व का आभास कराना चाहती है। महिलाओं को सम्पत्ति में बेटे के बराबर हक देने हेतु हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन, घरेलू महिला हिंसा अधिनियम, सार्वजनिक जगहों पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध नियम एवं लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध उठती आवाज नारी को मुखर कर रही है। दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, शराबखोरी, लिंग विभेद जैसी तमाम बुराइयों के विरुद्ध नारी आगे आ रही है। ये सभी घटनाएँ अधिकारों से वंचित नारी की उद्विग्नता को प्रतिबिंबित कर रही हैं।

वर्तमान समय में नारी अपनी सम्पूर्णता को पाने की राह पर निरंतर बढ़ रही है, ताकि समाज के नारी विषयक अधूरे ज्ञान को अपने आत्मविश्वास की लौ से प्रकाशित कर सके। नारी सृजन की प्रतीक है। हमारे यहाँ साहित्य और कला में नारी के कोमल रूप की कल्पना की गई है। कभी उसे कनक–कामिनी तो कभी अबला कहकर उसके रूपों को प्रकट किया गया है। पर आज की नारी इससे आगे है। वह न तो सिर्फ कनक–कामिनी है और न ही अबला, इससे परे वह दुष्टों की संहारिणी भी बनकर उभरी है। नारी की यौनिकता पर चोट करनेवालों को नारियों ने करारा जवाब दिया है। वे नारी देह की बजाय उसके दिमाग पर जोर देती हैं। उनका मानना है कि दिमाग पर बात आते ही नारी पुरुष के समक्ष खड़ी दिखायी देती है, जो कि पुरुषों को बर्दाश्त नहीं। इसी कारण पुरुष नारी को सिर्फ देह तक सीमित रखकर उसे गुलाम बनाये रखना चाहता है। यहाँ पर अमृता प्रीतम की रचना 'दिल्ली की गलियाँ याद आती हैं, जब कामिनी नासिर की पेंटिंग देखने जाती है तो कहती है, तुमने 'वुमेन विद फ्लॉवर', 'वुमेन विद ब्यूटी' या 'वुमेन विद मिरर' को तो बड़ी खूबसूरती से बनाया पर वुमेन विद माइंड बनाने से क्यों रह गए। निश्चितत: यह कथ्य पुरुष वर्ग की उस मानसिकता को दर्शाता है, जो नारी को सिर्फ भावों का पुंज समझता है, एक समग्र व्यक्तित्व नहीं। दरअसल नारी को 'मर्दवादी यौनिकता' से परे एक स्वतंत्र व समग्र व्यक्तित्व के रूप में देखने की जरूरत है। आज जरूरत है, नारी जाति की उपलब्धियों को पितृसत्तात्मक समाज में स्वीकार किया जाना और उनकी उपलब्धियों की हर कीमत पर रक्षा करते हुए विस्तार।

नारी अस्मिता और विमर्ष के नये आयामों, सवालों को नारी आन्दोलन और वैचारिक संघर्ष के केन्द्र में लाकर नारी अपनी नयी पहचान बना रही है। इसमें कोई शक नहीं कि नारी अस्मिता और सशक्तिकरण के संघर्ष को प्रभावी बनाने के लिए जरूरी है कि नारी अपना पक्ष खुलकर रखे, और एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में अपनी स्थिति को जाने, उसे बदले और नये विकल्पों का निर्माण करे। नारी सशक्तिकरण के माध्यम से ही सामाजिक तानेबाने को और अधिक मजबूत किया जा सकता है। यह इक्कीसवीं सदी के बदलते समाज का जटिल यथार्थ है, जिसमें कोई फंतासी भरा नायक या प्रतिनायक नहीं, बल्कि साधारण–सी दिखनेवाली तमाम नायिकाएँ हैं, जो मिल–जुलकर अपने समय का आख्यान रच रही हैं।

ग़ज़लें

चाँद मुंगेरी,
बोकारो
9204093040

जीवन के पथ पर हम दौड़ें ले इच्छा उत्पात की
आओ कोई राह तलाशें हम अपने सम्मान की
उत्तर–दक्षिण, पूरब–पश्चिम जन–जन पूछे प्रश्न यही
कबतक भर पायेगी खाई निर्धन और धनवान की
बच्चा–बच्चा पूछ रहा है विचलित हो संसार से
और करेंगे कबतक पूजा धरती के भगवान की
गिरबी उनके हाथों होगा कबतक अपना भागय कहो
कीमत और चुकानी होगी क्या अपने मुस्कान की
श्रम का यह फल मीठा होगा अब भी आशा शेष है
आएँगी अपने घर किरणें ईश्वर के वरदान की।

।।2।।

क्या बताएँ किस तरह से चल रही है ज़िंदगी
बस अधूरा ख़्वाहिश में गल रही है ज़िंदगी
दूर तक फैला हुआ है यह कुहासा प्यार का
बेकरारी झेलकर भी पा रही है ज़िंदगी
हर कदम धोखा हुआ है आशिकों के साथ ही
देखकर उनकी नज़ाकत खल रही है ज़िंदगी
खो गई इंसानियत भी इस घिनौनी चाह में
चाहतों का राख रू पे मल रही है ज़िंदगी
पाँव के इन आवलों की टीस क्या समझोगे तुम
दर्द के साँचे में कैसे ढल रही है ज़िंदगी
हर किरण में अक्स रहता एक टुकड़ा धूप का
चाँद ऐसी सोच में ही जल रही है ज़िंदगी।

ज्योत्स्ना अस्थाना
उलियान जमशेदपुर
9334624342

वर्षा गीत

उमड़त–घुमड़त आये बदरवा
रिमझिम गीत सुनाये बदरवा
हर्षित पुलकित महकाता
चुनर धानी लहराये बदरवा
उमड़त–घुमड़त आये बदरवा

चंदा की चितवन से चाँदनी
मंद–मंद मुस्काये बदरवा
अरे, उड़–उड़कर बदली का आँचल
चंदा को दुलराये बदरवा
उमड़त–घुमड़त आये बदरवा

मेघ मल्हार मृदंग थाप पर
महानटी घुँघरू झनकाये
अरे, थिरकत चपला मन विभोर कर
खन–खन–खन कंगना खनकाये
उमड़त–घुमड़त आये बदरवा

सिसकत पछुआ साँस–पास सम
प्रेम ज्वाला भड़काये बदरवा
अरे, छिन–छिन छुअत शीत झकोरा
मन्मथ मन हो जाये बदरवा
उमड़त–घुमड़त आये बदरवा

मेघराज मदमस्त मदन बन
झर–झर–झर रस बरसाये
अरे, नदिया की उन्मत्त यौवन को
अल्हड़ सा कर जाये बदरवा
उमड़त–घुमड़त आये बदरवा
रिमझिम गीत सुनाये बदरवा

आलेख

विद्यापति के पदावली में सौंदर्य–बोध

डॉ. मौसम कुमार ठाकुर 'शिक्षक'
गोड्डा, झारखण्ड,
मो0 – 9128349999

हिन्दी साहित्य के श्रृंगार–परंपरा और आरंभिक गीतकारों में मैथिल कोकिल विद्यापति का स्थान महत्वपूर्ण है। विद्यापति अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति 'पदावली' के आधार पर हिन्दी के प्रथम कवि होने के साथ–साथ मध्ययुगीन श्रृंगार काव्य के अन्तर्गत विभिन्न परंपराओं के प्रवर्त्तक सिद्ध हुए हैं।

विद्यापति के विभिन्न पदों का संग्रह मिथिला, नेपाल और बंगाल में किया गया है, जिनमें जन–मुख के कहे पदों का भी संकलन है। विद्यापति के प्रादुर्भाव के समय भाषायी संक्रमण के कारण कवियों की रचनाएँ जन–संपर्क से वंचित रह जाते थे इसलिए उन्होंने जन सामान्य की भाषा पर जोर देते हुए कहा–

''सक्कय वाणी बहुजन भावइ, पाउँअ रस को मम्म न पावइ
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तं तैसन जम्पजो अवहट्ठा।।''[1]

डॉ. उमेशा मिश्र, डॉ. जयकांत मिश्र, पं. शिवनन्दन ठाकुर आदि विद्वानों ने मैथिली, जो हिन्दी की ही बोली है, को 'पदावली' का भाष माना है। किन्तु कुछ भाषाविदों के द्वारा इसमें शौरसेनी अपभ्रंश के विकसित तत्व और ब्रजभाषा के प्रभाव की भी चर्चा की गई है। विद्यापति की पदावली में संस्कृत के तत्सम, तद्भव, अपभ्रंश, देशज शब्दों के साथ–साथ सन्दर्भानुसार अरबी–फारसी शब्दों का भी समावेश है। 'पदावली' के पदों की
सहज ग्राह्यता, व्यापक संप्रेषणीयता तथा प्रसार का मुख्य श्रेय भाषा में व्यापक शब्दावली के व्यवहार को जाता है। मानव अपने उत्पत्तिकाल से ही सौंदर्य की आराधना और उपासना किसी–न– किसी रूप में करता आ रहा है; क्योंकि यह उनकी अंतर्तम आकांक्षा का प्रतीक है। सौंदर्य शब्द से तात्पर्य है –'अच्छी तरह आर्द्र करनेवाला, कैंची की तरह काटनेवाला तथा जीवन या आनन्द देनेवाला।''[2]
सौंदर्य के विशद विवेचक कुन्तक ने सौंदर्य के लिए
'सौभाग्य' और 'लावण्य' जैसे दो शब्दों का प्रयोग किया है। सौभाग्य छान्दोमयी वाणी के अन्तरंग धर्म को प्रकट करता है, तो लावण्य उसके वाक्य की सुन्दरता का संकेतक है।

सौंदर्य की चर्चा साहित्य–शास्त्र में विभिन्न रूपों में की गई है। अलंकार, रीति, गुण, औचित्य, ध्वनि, रसादि काव्य स्वरूप के अंकन में आते हैं और किसी न किसी रूप में सौंदर्य पर विचार कर लेते हैं। जिस वस्तु से मानव मन को सुखद अनुभव होता है, उसे वह सुंदर कहता है। इन्द्रियों से प्राप्त सुंदर अनुभूति की तरह काव्य भी मानस–चित्रों एवं मानस प्रत्ययों द्वारा सौंदर्यानुभव प्रदान करता है, जिसे रसानुभव भी कहा जाता है।

महाकवि माघ के अनुसार – 'क्षणे–क्षणे यन्न वतामुषैति तदैव एवं रमणीयताया:।'[3] अर्थात् देखनेवाली दृष्टि विवृत्ति (प्रकटीकरण) करनेवाले मन को क्षण–क्षण में जो नवीन मालूम पड़े, उसी को सौंदर्य कहते हैं। 'पदावली' में आश्रय और आलम्बन का सापेक्ष रूप से इसी का तो चित्रण हुआ है। राधारूपी नायिका के सौंदर्य का अदभुत प्रभाव जब नायकरूपी कृष्ण पर पड़ता है, तो रूपक अतिशयोक्ति द्वारा वर्णित है–

'माधव कि कहब सुन्दिरि रूपे
कतेक जतन विहि आनल समारल।।
देखलि नयन सरूपे पल्लव राज चरण–युग शोभित
गति गजराजक माने।।''[4]

वहीं नायिका का रूप यौवन की छलकती गगरी है। नायिका का यह रूप पारस रूप है, जिसकी प्रभा से ही सभी पदार्थ प्रकाशित हैं। कवि कहते हैं –

''जहाँ–जहाँ पग जुग धरई। तहिं–तहिं सरूरह झारई।।
जहाँ–जहाँ झलकत अंग। तहिं–तहिं बिजुरि तरंग।।[5]

सौंदर्य की खान नायिका जिधर–जिधर पैर रखती है, वहीं–वहीं कमल खिल जाते हैं और कहीं अंगों की चमक तो विद्युतलता की तरंग बनकर अप्रस्तुत योजना में दीप्त हो उठती है। विद्यापति भी सौंदर्य के क्षेत्र में क्षण–क्षण नवीनता के उपासक है। इस प्रकार कवि का सौंदर्य वर्णन सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाता है जो उनका सौंदर्य अभिराम है।

''सेहो रूप अनुराग बखानिअ, तिल–तिल नूतन होय।'' 6

रससिद्ध कवि विद्यापति के 'पदावली' में वर्णित सौंदर्य यौवनजनित सौंदर्य है। यह सौंदर्य स्वाभाविक और नैसगिर्कता के साथ–साथ रसातिशयोक्ति पूर्ण है। पदावली में सौंदर्य का आलम्बन राधा और कृष्ण हैं, जिनके सौंदर्य के पार्थिव, स्थूल और इन्द्रिय–ग्राह्य
चित्रों को खींच उन्हें धरती पर उतारा गया है। कवि ने प्रकृति के नाना उपकरणों को अपनाकर 'पदावली' के काव्यगत सौंदर्य को सजीवता प्रदान किया है, जिसमें राधा और कृष्ण के प्रेम और उनके अपूर्व सौंदर्यों का विशद वर्णन है। संशलिष्ट सौंदर्य को कवि ने 'अपरूप' कहा है, जो कवि की काव्यमर्मज्ञता और रसानुप्रियता का परिचायक है। उनका सौंदर्य लौकिक परिधि से उपर उठकर अलौकिकता को स्पर्श करता है। 'पदावली' में विभिन्न रसों का सुंदर समन्वय है, पर श्रृंगार रस की प्रधानता रही है। पदों में श्रृंगार रस के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का तारतम्य है। कायिक वर्णन में कवि ने वय: संधि, नखशिख–वर्णन, स्नाता आदि के माध्यम से नायक–नायिका के अवयवी रूपों का सुंदर वर्णन किया है। श्रृंगार के संयोग पक्ष में कवि ने आलम्बन और विप्रलम्भ के भावों की ओर अधिक ध्यान दिया है। आलम्बन राधा के विविध सौंदर्य तथा आश्रय रूप में कृष्ट की विविध चेष्टाओं, मुद्राओं आदि का विधान प्रस्तुत किया गया है। प्रेमी प्रेयसि की परस्पर मान, मनुहार, मिलन, वियोग एवं सौंदर्य के अन्तर्गत उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्रों को बिम्बित किया गया है –

''नन्दक–नन्दक कदेम्बेरि तरुतरे
धीरे–धीरे मुरलि बोलाव।
गोरस बिक–निके अबइते आइते
जानि–जनि पुछ बनवारि।।'' 7

जब नायक–नायिका एक दूसरे के निकट होते हैं, तो रूप–लिप्सा से उत्पन्न प्रेम और आकर्षण जीवन में अभिनव आनन्द का संचार करनेवाला होता है। कृष्ण नटवर बन बाँसुरी बजा राधा को बुलाते हैं, काफी समय बीत जाने पर भी जब राधा नहीं आती है, तब नायक उत्कंठित होकर राह में आने–जानेवाले दूध–दही बेचनेवालों से राधा की सुध लेते हैं, बार–बार राधा की राह देखते हैं। आश्रय पक्ष का यह विह्वलता और उत्सुकता सत्य और सटीक है। श्रृंगार में आलम्बन मुख्य रूप लौकिक होता है, इसलिए कवि द्वारा नायक–नायिका के शारीरिक सौंदर्य वर्णन सहज और स्वभाविक ही है। पदावली में वय: संधि, सद्य: स्नाता, नखशिख, नायिका भेद, प्रेम प्रसंग, दूती, प्रेमभाव, मान, अभिसार, मिलन, विप्रलम्भ, पुनर्मिलन, नोंक–झोंक, मान भंग, विदग्ध विलास, ऋतु वर्णन में आदि सभी श्रृंगारिक भावों का जीवंत वर्णन मिलता है।

वय: संधि :–

कवि द्वारा 'पदावली' में नायिका के बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश के दौरान शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों के परिर्वतन का स्वाभाविक वर्णन किया है –

''सैसव जौवन दरसन मेल।
दुहु दल बले दंद परिगेल।।
कबहुँ बान्धये कच कबहुँ बिधारि।
कबदु झांपय अंग कबहुँ उघारि।।'' 8

नायिका यौवन छलकती गगरी है, जिसमें बढ़ते–बढ़ते यौवन ऊपर तक लबालब भर जाता है, तब अनंगपीड़ित यह नायिका अपनी सखियों से काम–क्रीड़ा की चर्चा करने लगती है, धीरे–धीरे तरुणाई की ओर अग्रसर नायिका में ऐसा होना स्वभाविक ही है।

सद्य: स्नाता :–

'पदावली' में बड़ी कुशलता के साथ नायक–नायिका के साकार चित्रों का अंकन मौलिक उद्भावना के साथ हुआ है। स्नान करती हुई नायिका के सौंदर्य उनके अंगों, भाव–भंगिमाओं, पहने आभूषणों को देखकर नायक का कामोद्दीपन सहज और स्वाभाविक है –

''आजु मझु शुभ दिन भेला। कामिनि पेखलु सिनानक बेला।।
चिकुर गलये जलधारा। मेह बरखये जनु मोतिमहारा।। 9

नख शिख :–

आंतरिक उद्दीपनों के अंतर्गत नायिका का रूप–यौवन, मुग्धता आदि 'नखशिख' वर्णन कहलाता है। विद्यापति की 'पदावली' में लौकिक आलम्बन का शिख से नख वर्णन और अलौकिक आलम्बन नख से शिख वर्णन, दोनों हैं। इस वर्णन में कवि द्वारा विभिन्न उपमाओं का सुंदर सहारा लिया गया है –

''पीन पयोधर दूबरि गता। मेरू उपजल कनक लत्ता।
मुख मनोहर अधर रंगे। फुललि मधुरी कमल संगे।
लोचन जुगल भृंग अकारे। मधुक मातल उड़ए न पारे।।'' 10

नायिका भेद :–

'पदावली' में नायिका भेद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। नायिका के मानसिक मनोभाव, उल्लास, आशा, अभिलाषा, वेदना के मूर्त रूप का वर्णन हुआ है। विद्यापति की नायिका परकीया न होकर स्वकीया है, जिसमें कलहांतरिता और विप्रलम्भ दशाओं का मार्मिक वर्णन है।

''चन्दन चरच पयोधर रे, जिम गजमुक्ता हार
तखन मदन सरे पुरल रे, गति गज्जर गजराज'' 11

कवि द्वारा नायिका के सभी मनोदशाओं और गुणों– मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, स्वकीया, परकीया, वासकसज्जा, स्वाधीन पतिका, शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका, लक्षिता, गुप्ता, विलक्षिता, प्रोषितपतिका, प्रवत्सतपतिका, विदग्धा, खंडिता, मानवती, आनन्दसम्मोहिता, नवोढ़ा, विश्रब्धनवोढ़ा आदि का वर्णन पदावली में विभिन्न अवसरों पर किया गया है।

दूती या सखी :–

दूती या सखी नायक और नायिका के बीच सेतु का काम करती है वह दोनों की संदेशवाहिका बन उन्हें परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित कराती है। इस दौरान वह मंडन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास जैसे कर्त्तव्यों का भी पालन करती हैं। 'पदावली' में

दूती का यह वर्णन इसी प्रकार प्रिय प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा और प्रेम की प्रगाढ़ता की मजबूती को दर्शाते हुए हुआ है –

''पीन पयोधर दूबरि गता। मेरू कनकलता।''
ऐ कान्ह, ऐकान्ह तोरि दोहाई। अति अपूरब देखल राही।।'' 12

प्रेम :–

संयोग पक्ष के कौतुक भावोल्लास, छलना, सखी सम्भाषण परम्परागत वर्णनों के अनुरूप 'पदावली' में प्रेम का उदय अद्भुत है। काव्य में वर्णित प्रेम व्यापक और उदात्त है। पदावली के अधिकांश पदों में प्रेम की ही अभिव्यंजना हुई है। यही मधुरभाव का आलम्बन राधा–कृष्ण के प्रेम को आदर्श बनाता है –

''मन करे तहाँ उड़ि जाइय, जहाँ हरि पाइए रे।
प्रेम–परस मनि जानि, आनि उर लाइए रे।।'' 13

अभिसार :–

अभिसार का संयोग विशेषकर सम्भोग में विशेष महत्व है। 'पदावली' में नायिका समस्त बाधाओं से लड़कर कष्ट और वेदना सहकर उद्दीपन की सापेक्षता और सम्भोग के उद्देश्यरूपी मर्मस्पर्शी भाव लेकर नायक के पास जाता है, जो नायिका के अत्यंत मधुर आकर्षक प्रेम अभिव्यंजना है –

''वाट विकट फनिमाला। चउदिसि बरिसए जलधर जाला।।
हे माध्व बाहु तरिए नरि भागे। कतए भीति जो दृढ़ अनुरागे।।'' 14

नायिका के वियोग की यह दशा शृंगार के दूसरे पक्ष को लक्षित है।

विप्रलम्भ :–

'पदावली' की नायिका पार्थिव जगत् की सामान्य नारी है। उसका प्रेम स्थूल और वासनाजन्य इसलिए प्रिय का वियोग नायिका को असह्य वेदना देता है, वह अपने शृंगार को त्याग देती है। कभी–कभी तो उसे प्रिय के प्रवास से अधिक दुख अपने यौवन के बीत जाने का होता है –

''कहब पथिक पिया मन दए रे जौवन बले चलि जाये।'' 15

मान :–

जब नायक–नायिका के परस्पर रूठे रहने की स्थिति में होते हैं, तो उस समय प्रणय में मान महत्त्वपूर्ण हो जाता है। नायक–नायिका में परस्पर प्रेमभाव रहने के बावजूद यदा–कदा परिस्थितिवश नायिका के मान को लेकर नायक की दयनीय स्थिति हो जाती है, जिसका वर्णन और विरह विदग्ध नायिका का भी चित्रण 'पदावली' में मार्मिक भाव से हुआ है –

''मदन कुँज पर बइसल नागर, बन सखि भूख चाहि।
जोड़ि जुगल कर बिनति करए कत, तुरंत मिलावहि राहि।।'' 16

''की हम सांझक एकसरि तारा, भादव चौठिक ससी।
हाथि दुहु मांझ कओन मोर आनन जे पहु हेरसि न हंसो।।'' 17

मिलान :–

संभोग शृंगार में कायिक मिलन की पुरानी परम्परा का निर्वहन करते हुए कवि ने 'पदावली' में इसका दार्शनिक, सरल और यथार्थ चित्रण किया है। मिलन रात्रि की मधुरता, उत्सुकता, लज्जा आदि स्वाभाविक है। मिलन के समय नायिका अपने सारे दुखों और द्वन्द्वको भूलकर पूर्ण आनन्द में मग्न हो जाते हैं।

''सोई कोकिल अब लाख डाकओ, लाख उदय करू चन्दा।
पाँच बान अब लाख बान होई, मलय पवन बहु मन्दा।। 18

''पदावली'' के शृंगारिक वर्णन के कारण ही सुधि पाठक गण सौंदर्य की चरमोत्कर्ष तक पहुँचते हैं। पदावली के शृंगार परक पदों की भावलोक की विशेषताएँ अनूठी हैं। 'पदावली' में विभाव अनुभाव और संचारी के सम्यक् निरूपण पदों के भावपक्ष को अधिक प्रभावोत्पादक बना देता है।

आश्रय :–

आश्रय के रूप में राधा–कृष्ण का चित्रण नायक– नायिका के रूप में 'पदावली' में हुआ है। इसमें आलम्बन का सौंदर्य, अलंकार, चेष्टा आश्रय की मन: स्थिति का यथार्थ सजीव और स्वाभाविक चित्रण है। नायक–नायिका की उत्सुकता, विह्वलता, विकलता का आकर्षक और सटीक वर्णन अन्यत्र ही कहीं मिलता है जैसा कि 'पदावली' में है –

''प्रथम दरस रख रभस न जानए, कि करित पहु सयं केली।
नवि नलिनी जनि कुंजरे गंजलि, दमने दमन तनु भेली।'' 19

आलम्बन :–

'पदावली' में आश्रय और आलम्बन उभय पक्षों का चित्रण के साथ हुआ है, जो वर्णित सौंदर्य सांकेतिक एवं बिम्बात्मक दोनों हैं। हाव, भाव और हेला का कवि द्वारा अदभुत प्रभावोत्पादक विधान से कुशल वर्णन किया है। काव्य में केवल बाह्य सौंदर्य की

नहीं, हृदयगत सौंदर्य भी समन्वित है, जिसमें अंगज, अयत्नज और स्वभावज तीनों अलंकारों का समन्वय है –

''थिर नयान अथिर कुछ मेल, अरज उदय थल लालिम देला।
चंचल चरण चित, चंचलभान, जागल मनसिज मुदित–नयान।।''20

उद्दीपन :–

आलम्बन के कारण उद्दीपन विभाव होता है, जिसमें चेष्टाओं, क्रियाओं,

मुद्राओं, भंगिमाओं से आश्रय के हृदय में स्थायी भाव उद्दीप्त होता है। 'पदावली' में आलम्बन राधा (नायिका) है। नायिका यौवन का मेल (वयः संधि) अंगों में उत्पन्न अनंग पीड़ा, संबंधित अन्य क्रियाएँ आलम्बनगत उद्दीपन है, जो नायक के हृदय में रतिभाव उद्दीप्त कराता है –

''हृदय आरति बहुभय तनु कांप।
नूतन हरिनि जनु हरिन करू झांप।'' 21

अनुभाव :–

'पदावली' में सात्विक और कायिक दानों अनुभाव योजनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। काव्य में शृंगारान्तर्गत हाव, भाव, अनुभावों की विशेष विशेषता है। नायक–नायिका दोनों में अनुभावों की व्यंजना मिलती है –

''गेलि कामिनी गजहुँ गामिनी, विहंसि पलटि निहारि।
इन्द्रजालक कुसुम सावक, कुहुक मेल कर नारि।'' 22

संचारी भाव :–

स्थायीभाव की पूर्णता संचारियों के समावेश से ही होता है। 'पदावली' में शृंगार के सभी अंगों का सुंदर समायोजन है, शृंगार के उद्रेक में समर्थ विभाव, अनुभाव एवं संचारियों का व्यापक व्यंजना है –

''सुन्दरि चल लिहुं पहु घर ना। चहूँदिस सखि सब कर घर ना।।
जाहत हुँ लाग परम डर ना। जइसे ससि कांप राहु डरना।'' 23

'पदावली' में विरह वेदना की विभिन्न दशाओं अभिलाषा, स्मृति, गुणकथन, व्याधि, दधेग, प्रलाप, जड़ता, उन्माद, मूर्छा आदि का स्वाभाविक और सुंदर वर्णन हुआ है। कवि द्वारा पुनर्मिलन नोक–झोंक, भंग, ऋतु (प्रकृति) आदि का भी सुन्दर वर्णन पदावली
में किया गया है।

संदर्भ :–

1. कीर्तिलता – विद्यापति – 01/18 – 22
2. सत्यं, शिवं, सुन्दरम् – भाग– 02, डॉ0 रामानन्द तिवारी, प्रथम संस्करण पृ. सं.– 943
3. कवि माघ– शिशुपाल वध – 4/17
4. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 25
5. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 625
6. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 768
7. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 228
8. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 618
9. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 632
10. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 237
11. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 38
12. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 237
13. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 527
14. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 105
15. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 509
16. रामवृक्ष बेनीपुरी – विद्यापति पदावली, पद सं0– 139
17. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 151
18. मित्र एवं मजुमदार –विद्यापति पदावली, पद सं0– 966
19. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 836
20. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 618
21. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 682
22. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 635
23. मित्र एवं मजुमदार – विद्यापति पदावली, पद सं0– 896

'पदावली' का भाव सौंदर्य, विचार सौंदर्य, नाद सौंदर्य, अप्रस्तुत–योजनाओं का सौंदर्य उच्चतम स्तर का है। बाह्य स्वरूप के छः तत्त्वों लय, छंद, तुक अलंकार, शब्द योजना और चित्रात्मक भाषा का मनोहारी समावेश है। कवि ने 'पदावली' में प्रकृति के नाना उपकरणों को भी अपनाकर काव्यगत सौंदर्य को सजीवता प्रदान किया है। प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन, उपमान (अलंकार–विधान), मानवीय भाव आदि के रूप में उपस्थापित किया है। पदावली शृंगार रस से सराबोर होने के कारण मन में मन्मथोद्भेद करनेवाली मन्मथ संबंधी विविध कवि के प्रसिद्धियों को प्रदर्शित करती है। 'पदावली' जीवन की विभिन्न मार्मिक गहन अनुभूतियों का समुच्चय है, जिसमें विद्यमान नायक–नायिका के सौंदर्य निरूपण और कलात्मक वर्णन हिन्दी साहित्य में विरले ही मिलता है। 'पदावली' के पदों का सौंदर्य, प्रेम, विरह के गीत सहज की राग–रागनियों से युक्त होने के कारण जनमानस के लिए प्रेषणीय है। 'पदावली' जनमानस के लिए काव्यत्मक आनंद का अपूर्व स्त्रोत है।

दूसरा गाँधी (कविता)

संतोष कुमार राय 'साँच'
मंगराना, गोनौली,
मधुबनी, 6204644978

काफी विचारने के बाद भी
नहीं समझ पाया कि इस देश में
राजघाट पर इतने जनसैलाब के बावजूद
सत्य कहाँ चूक गया

व्यवस्था परिवर्तन के नारे
उबलते खून का समंदर
सफेद टोपी का वह भ्रम
छुप गया या दफन कर दिया गया कहीं

रामलीला के मैदान में
तिरंगा लहराते उताबले देशभक्त कहाँ गये
उनका गाँधी कहाँ गया
जनमानस के पैरोकार कहाँ गए

बीच सड़क पर खून कर दिया जाऊँ
तो इस देश में मुश्किल से मिलेंगे
राम–राम सत्य है कहनेवाले
कफन और कंधा देनेवाले
अगर बाजार में मिलता हो गाँधी तो बताना
खरीदूँगा मुँहमाँगे दाम देकर
सत्य–अहिंसा की पूँजी से
उसमें प्राण डालूँगा

तब हरेक प्रश्न का जवाब देगा वह
लोगों की समस्याओं का समाधान करेगा
मुफ्त में रोगों का निदान करेगा
आनंद ही आनंद होगा चारों ओर

तब शव–यात्रा निकलेगी
गाँधीवाद की पोथी बेचनेवालों की
सड़क पर तब कोई माँ नहीं चिल्लाएगी
जान जायेंगे कान में तेल डालकर सोनेवाले

यह हमारा गाँधी होगा
'दूसरा गाँधी' कह सकते हैं हम उन्हें
कर्मशील गाँधी, जनगाँधी
बिना मालावाले गाँधी

कहानी

मेरी होली तो हो–ली

मनोरंजन सहाय सक्सेना
टौंक रोड, जयपुर
9460302770

'जीवन संध्यांगन' नामक इस वृद्धाश्रम के सेक्रेटी आनन्दजी भारतीय राजस्व सेवा की वरिष्ठ अधिकारी दिवंगता महिला की दैनिक जीवन में उपयोग की सभी मूल्यवान वस्तुएँ उनकी अन्तिम इच्छानुसार जरूरतमंदों में बाँट चुके और बैंक में जमा पैसे को भी ट्रस्ट के कोश में जमा करा चुके थे, मगर वह इस डायरी को लेकर बेहद असहज हो रहे थे कि आखिर इसका क्या करें। किसी को दे तो सकते नहीं थे और उनके संस्कार दूसरे की व्यक्तिगत डायरी पढ़ने की इजाजत दे नहीं रहे थे। तब करें तो क्या करें, यह सोचते–सोचते आधी रात हो गई, मगर समस्या हल नहीं हुई, तो उनके मन में विचार आया–महिला तो अब है नहीं और वह इस डायरी की बात किसी को बतलाने से रहे तो पढ़कर देखें कि आखिर उस बेहद अल्पभाषी और गम्भीरता का मुखौटा लगाये रहनेवाली महिला के जीवन का रहस्य है क्या?

आनन्दजी को ध्यान आ रहा था कि उन्होंने जब भी उस महिला के चेहरे को गौर से देखा उसके सौम्य गम्भीर चेहरे पर बड़ी बड़ी मगर सूनी–सूनी–सी आँखों में एक घोर विषाद की रेखा दिखाई पड़ी, मानों वह अपने किसी बड़े अपराधबोध का मौन प्रायश्चित कर रही हो।

डायरी छात्रावस्था में लिखना शुरू किया गया लगता था। डायरी में जीवन की कुछ खास घटनाएँ अलग–अलग कॉपी के पन्नों में लिखी गई थी और फिर शायद यही आदत बन गई थी। बाद में कभी कुछ भावुक पलों में इन पन्नों में बिखरी जिन्दगी के खास लम्हों को अक्षुण्ण बनाने के लिए जिल्द में सुरक्षित किया गया लगता था। लेखक का नाम कहीं अंकित नहीं था। केवल एक व्यक्ति का नाम लेकर लिखा गया वर्णन था डायरी में। तारीखें और साल एक या दो स्थान पर ही पठनीय थी। डायरी की कहानी कुछ इस प्रकार थी–

पहला पृष्ठ –

''होली दो वर्णों से मिलकर बना यह शब्द कितने अलग– अलग अर्थ और स्वरूपवाला है–इसका आम और प्रचलित अर्थ और स्वरूप है–उमंग और उत्साह से भरा–रंगों का वह मस्तीभरा त्यौहार, जो हर दिल में ऐसी मस्ती भर देता है कि उसके नशे में चंग की थाप पर पैर अपने आप थिरकने लगते हैं। होठ अपने आप गाने लगते हैं–

'होली आई रे कन्हाई रंग बरसे सुना दे जरा बाँसुरी''

और कोई सूफी–सा व्यक्ति भी गाने लगता है–

''छूटे न रंग ऐसे रंग दे सँवरिया,
धोबनियाँ धोये चाहे सारी उमरिया''.

अंग्रेजी में तो यह एकदम पवित्र ही है और इसकी वर्तनी को हिज्जे अलग–अलग कर बोले तो–हो ली यानी जो होनी थी, वह हो चुकी। तो मेरी होली भी हो ली. यह अब रंगों के उल्लास का पर्व नहीं है मेरे लिए। वह तो धधकती धू–धू करके जलती होलिका के दहन का दाह है मेरे लिए।

11 मार्च, 1971 (बस यही तिथि वर्ष के साथ पठनीय है)

वह होली का ही दिन था। रात को होलिका दहन की तैयारी चल रही थी कि परिवार का और मेरा सहपाठी पूर्णेन्दु घर में आया और अपनी आदत के मुताबिक बिना किसी भूमिका के माँ से बोला–''काकी! मैं आज रात आपके घर रह सकता हूँ।''

सुनकर माँ तो एकदम अवाक् रह गई। उन्हे यों हक्का– बक्का देखकर पूर्णेन्दु बोला–''अगर आपको भी मम्मी का डर है या कोई असुविधा है, तो कोई बात नहीं। मैं चलता हूँ''–कहकर जैसे आया था, वापस चला गया।

पूर्णेन्दु–इस उच्चवर्गीय लोगों की कालोनी में ऐसे परिवार का सदस्य जिसमें माँ–बाप, दोनों भाई–भाभियाँ, बहन–बहनोई सभी अपने–अपने क्षेत्र के ख्यातिप्राप्त डाक्टर हैं। दोनों भाई–भाभी और बहन–बहनोई विदेशों में हैं। माँ शहर की कई राजनैतिक संस्थाओं से सम्बद्ध होने के कारण बदमिजाज डॉक्टर के रूप में ख्याति प्राप्त है।

मेरे पिता भी एक ख्यातिप्राप्त सर्जन हैं, जिनके पास पूर्णेन्दु की माँ केवल कभी–कभी कुछ व्यावसायिक परामर्श करने आती है, मगर पूर्णेन्दु के पिता अक्सर शाम को हमारे घर आते रहते हैं।

पूर्णेन्दु चला गया, तो मेरे मन को एक ठेस लगी, मगर अपने हमउमर लड़के के बारे में माँ–बाप से बहस करने की हिम्मत कहाँ थी, सो केवल यह कह पाई–''माँ! अगर आज रात पून्नो –'पूर्णेन्दु का पुकारा जानेवाला नाम' हमारे घर रह जाता, तो क्या बिगड़ जाता?''

माँ ने प्रश्न के जवाब में प्रश्न दाग दिया–''क्यों उसका अपना घर नहीं है क्या?और उसकी माँ जब आफत खड़ी करती, तो तुम जवाब देती?'

12 मार्च –

पून्नों के पिता होली की शुभकामना का आदान–प्रदान करने आये, तो पता चला कि वह कल रात से घर नहीं आया है।

उसके पिता ने अटकते–अटकते से जो बताया, उसके अनुसार उसकी माँ ने उसका भविष्य कार्डियक सर्जन के रूप में तयकर दिया था, मगर पूर्णेन्दु ने चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई करने से मना कर दिया, तो पिछले एक माह से समझाइश का दौर चल रहा था, लेकिन कल जब पूर्णेन्दु ने माँ के सामने पी.एम.टी. का फार्म ही फाड़ डाला, तो माँ ने अपना नादिरशाही फरमान सुना दिया–घर से चले जाने का तो बचपन से ही हठी पूर्णेन्दु फौरन सिर्फ पहनने के कुछ कपड़े लेकर यह कहकर निकल गया–यह जेलखाना तुम्हीं लोगों को मुबारक हो।

पूर्णेन्दु के पिता जब घर आये थे, तब वह पूरी तरह आश्वस्त थे कि वह हमारे घर ही मिलेगा। मगर हमारे घर से वह रात को ही चला गया, सुनकर वह उदास होकर खामोशी से चले गये।

15मार्च

होली के बाद पूर्णेन्दु से कॉलेज में पहली दफा सामना हुआ, तो मैं उससे नजर मिलाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी। मुझे यों असमंजस में देखकर पूर्णेन्दु ने मुझे संकेत से लाइब्रेरी चलने को कहा। लाइब्रेरी में बुकशेल्फ के सामने खड़े होकर बोला–''तुम क्यों परेशान होती हो, यह तो मेरी अपनी, मेरी स्वतंत्र जिन्दगी की शुरूआत है।''

मगर तुम तीन दिन से हो कहाँ?रह कहाँ रहे हो,रात को सोते कहाँ हो?–मैंने उद्विग्नता से पूछा। उसने बड़ी सहजता से बताया–नींद तो रात को मुसाफिरखानों की बेंचों पर भी आ ही जाती है और बिना पैसे के खाने के लिए गुरूद्वारे का लंगर सचमुच बड़ा अच्छा होता है। अब कुछ दिनों एक दोस्त हॉस्टल में अपने साथ रखने को तैयार हो गया है। वार्डन ने भी अपना रिकार्ड देखकर परमीशन दे दी है। अब अगले सेशन की अगले सेशन में देखूँगा। कहकर वह तो मस्ती से हँस पड़ा, मगर मेरी आँखो में आँसू आ गये, तो वह बोला– देखो, अगर तुम्हारे अंदर मेरे प्रति जरा भी अपनापन है, तो कभी भी आँसू बहाकर मुझे कमजोर मत करना। बस कभी–कभी समय निकालकर मुझसे मिलकर मेरे इरादों को दृढ़ता प्रदान करती रहना। इसके बाद तारीख पठनीय नहीं थी।.

होली की उस रात के बाद पूर्णेन्दु ने घर से नाता ही तोड़ लिया। उसकी ड्राइंग काफी अच्छी थी, इसलिये सिनेमा के पोस्टर और बैनर बनाने लगा। उसकी माँ को जब पता चला, तो उसने अपने प्रभाव से ठेकेदार को उसे काम देने से मना करवा दिया, तब पूर्णेन्दु ने अपनी माँ को फोन किया–डाक्टर...! मैं तो आपको बहुत ताकतवर महिला समझता था। मगर आप तो इतनी कमजोर निकलीं कि एक सत्रह–अठारह साल के लड़के के खिलाफ लड़ने के लिए ऐसे लोगों का

सहारा लेना पड़ा है, जिनसे बात करना तक आप गँवारा नहीं करती। खैर, आप यह जान लें कि शहर में न तो यह अकेला सिनेमा है और न यह अकेला ठेकेदार, मैं हार नहीं मानूँगा।

दूसरे दिन दोनों के घर काम करनेवाली एक ही बाई से पता चला कि उस दिन शाम को पून्नो की माँ ने अपने पति से कहा–आपके सुपुत्र मुझे डाक्टर कहकर बुलाने लगे हैं, गोया अब मैं उनकी माँ ही नहीं हूँ। समझाइये अपने साहबजादे को।

''तुम्हें जो कहना था और पून्नो को तुम्हारी बात का जो मतलब समझना था, वह हो चुका। अब तुम्हारे कहे का नया मतलब समझाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है।'' कहते हुए पून्नो के पिता अपने कमरे में चले गये, तो पून्नो की माँ यह कहते हुए बाहर निकल गई–'साहबजादे को बता देना मुझे हारने की आदत नहीं है।'

उस दिन के बाद प्रायः पति–पत्नी में नित्य झगड़ा होने की खबर मिलने लगी। झगड़े के बाद पून्नो के पिता बेहद थके–से हमारे घर आते, मुझे एक प्याला चाय बनाने को कहते। दरअसल चाय पीने के बहाने वह पूर्णेन्दु का कुशलक्षेम पूछ लेते थे और सप्ताह के अन्त में मुझे कुछ रुपये देकर उन्हें पूर्णेन्दु को देने को कहकर बोलते थे–बेटी! अब तुम्हीं उसका ध्यान रखना, कहते कहते उनकी आवाज रुँध जाती थी।

मैंने उनके दिये रुपये पून्नों को दिये, तो उसने लेने से इन्कार कर दिया और कहा–मैं पापा को बहुत प्यार करता हूँ और आदर करता हूँ, मगर मैं खुद को मजबूत बनाना चाहता हूँ। तुम किसी तरह समझा–बुझाकर पैसे उन्हें वापस कर देना।

अजीब कशमकश थी–मैं एक दुःखी पिता को उनके पुत्र को देने के लिये दिये गये पैसे यह कहकर लौटाया कि वह पैसे लेने से इन्कार करता है, उन्हें और दुःखी नहीं करना चाहती थी और पूर्णेन्द ने एक बार मना कर दिया, तो वह किसी तरह से पैसे लेगा नहीं, यह समझते हुए बार–बार कहकर उसकी खुद्दारी को चोट भी नहीं पहुँचा सकती थी। सो पैसे चुपचाप अलमारी में रख देती थी।...

यूनिवर्सिटी का नया सेशन शुरू हुआ, तो पूर्णेन्दु ने आर्टस फेकल्टी में एडमिशन लिया। सब्जेक्ट्स का काम्बीनेशन उसकी तरह ही विचित्र था। इंग्लिश लिट्रेचर के साथ फिलासफी। अपनी मेधा के अनुसार दो महीने बीतते–बीतते वह इंग्लिश के कवियों और दर्शन के रहस्यों पर क्लास में प्रोफेसर्स से जमकर बहस करने लगा, तो लगा कि यह डाक्टर बनकर हृदय की चीर–फाड़ करने की बजाय हृदय की भावनाओं को समझने के लिये ही बना है। कॉलेज में वह दो तीन खेलों की टीमों में भी था, इसलिये ज्यादातर चर्चा का विषय रहता था।...

उस दिन जिन्दगी में एक नया मोड़ आया। हमारे कॉलेज को यूनिवर्सिटी हॉकी टुर्नामेंट की मेजबानी मिली थी। उस दिन सेमी फाइनल था। गत वर्ष की फाइनल विजेता टीम जब पूर्णेन्दु और उसके दो साथी खिलाड़ियों के लगातार हमले रोकने में नाकाम रहकर दो गोल से पिछड़ने लगे, तो मारपीट पर उतर आयी। एक लड़के ने सीधे पूर्णेन्दु के सिर पर हाकी स्टिक से बार किया। उसका सिर फट गया, खून बहने लगा। उसे मैदान के बाहर ले आया गया।

पूर्णेन्दु के सिर से बहता खून देखकर मैं बेहद घबरा गई और खून बहना रोकने के लिए मैंने अपना दुपट्टा उतारकर उसके सिर पर कसकर बाँध दिया। उन दिनों को–ऐजुकेशनवाले कॉलेज में बी.ए. में पढ़नेवाली लड़की का भी यह दुस्साहिक कदम ही था, मगर पूर्णेन्दु ने जब मेरी और कृतज्ञ नजर से देखा, तो मैं सब कुछ भूल गई।

अस्पताल पहुँचते ही उसके माँ–बाप भी पहुँच गये। पूर्णेन्दु की माँ ने सबसे पहले उसके सिर पर बँधे दुपट्टे और मेरे दुपट्टेविहीन वक्ष को घूर कर देखा, तो वह ड्यूटी डाक्टर से मुखातिब होकर बोली–डाक्टर! इस गन्दे–से कपड़े को फौरन हटाइये। घाव में इन्फेक्शन हो सकता है और – मगर उनकी बात काटकर पूर्णेन्दु बीच में ही आक्रोश से बोला–''प्लीज लेट देम डू देयर जॉब।'' फिर डाक्टर से बोला–''प्लीज डू नाट माइण्ड। दो ए डाक्टर बट ए मदर टु। आई एपोलाइज ओन हर बिहाफ एण्ड प्लीज केरी ऑन।''

पूर्णेन्दु के पिता ने उसे सहलाया, तो उन्हें बेहद घबराया हुआ देखकर वह बोला–पापा यू आलसो हेड बीन ए लीडिंग स्पोर्टमेन इन योर कॉलेज डेज–एण्ड यू बेटर नो देट सच टाइप ऑफ इन्जुरिज आर पार्ट ऑफ द गेम, सो डोण्ट गेट डिस्टर्ब, बट प्लीज आस्क हर टु गो अवे फ्राम हियर।''

पून्नो! वह तुम्हारी मां है, कहते हुये उसके पिता ने उसका हाथ कसकर थामा और उनकी आंखो में आंसू आ गये तो पूर्णेन्दु बोला–पापा! मैं आपको बहुत प्यार करता हूँ, आपका आदर करता हूँ, मगर मुझे कमजोर नहीं करें, प्लीज–'' कहते कहते एनस्थीसिया के असर से उसकी आँखे मुँदने लगीं।

पूर्णेन्दु मां भी अपनी पुत्र और पुत्री के परिवारों का हवाला देती हुई अपने जुगाड़ से विदेश चली गई।, मगर पिता ने जाने से साफ इंकार कर दिया, तो पता नहीं कैसे उनका प्रमोशन करते हुये स्थानान्तरण एक दुर्गम दूरस्थ छोटे–से जिले में हो गया, तो पूर्णेन्दु के परिवार से संबंध टूट ही गया। मगर हर माह पहले हफ्ते में पूर्णेन्दु के पिता का मनीआर्डर मेरे नाम से आने और सप्ताह में दो बार वह पूर्णेन्दु का कुशलक्षेम पूछने के लिए फोन करने और अन्त में भीगी आवाज में– 'बेटी! अब तुम्हीं उसका ख्याल रखना', कहने का सिलसिला चलता रहा।

एम.ए. फाइनल वर्ष के आरम्भ के दिन थे, जब पूर्णेन्दु मेरे पास आया था और आते ही बेहद उदास स्वर में बोला –कुछ रूपये काका–काकी से उधार दिलवा सकती हो। देखो! थोड़े पैसों की बात होती, तो मैं कुछ प्रबन्ध कर लेता, मगर मुझे सूचित किया गया है कि वहाँ पिताजी का अकस्मात स्वर्गवास हो गया है। बाकी लोग तो तीसरे दिन तक पहुँच पायेंगे, तबतक उस छोटे से जिले के नगर में शव रखने का इन्तजाम भी नहीं हो पायेगा, इसलिये मुझे तुरन्त निकटतम दूरी तक प्लेन से जाकर उनका संस्कार वगैरह करना होगा, इसलिये कम से कम सात आठ हजार रुपये चाहिये। 'अगर इन्तजाम हो जाये तो'–कहकर अपनी आवाज का कम्पन और आँखो में भर आये आँसू को छिपाने के लिए वह दूसरी तरफ देखने लगा।

मैंने पूर्णेन्दु के पिता के रुपयों में से लाकर पूरे दस हजार रुपये उसके हाथ पर रख दिये, तो वह कृतज्ञतापूर्वक बोला–'मैं जल्दी ही चुकाने की कोशिश करूँगा। हमेशा एक दृढ़ युवक पूर्णेन्दु को आज इस तरह विचलित देखकर मेरी आँखों से आँसू बह निकले, तो पूर्णेन्दु आहत स्वर में बोला–'अरे! पिता तो मेरे मरे हैं। मगर मेरे पास तो किसी का कन्धा ही नहीं है, जिसपर सिर रखकर आज थोड़ी देर रो लूँ।

पूर्णेन्दु को पहली बार इस कदर भावविह्वल देखकर माँ ने उसे सान्त्वना देने के लिये उसके सिर पर हाथ रखकर सहलाया, तो वह माँ से लिपटकर एक बच्चे की तरह बिलख पड़ा तो माँ भी उसे छाती ये चिपकाकर सिसकते हुए बोलीं–'बेटा! काकी माँ की छाती से लगकर रो ले।

पूर्णेन्दु को आज पहली बार इस तरह फूटफूटकर रोते देख मैं अन्दर तक इस कदर भीग गई कि माँ से उसके साथ जाने का हठकर बैठा। पूर्णेन्दु के करुण क्रंदन से आँचल पर टपके आँसू माँ को भी अन्दर तक इस कदर भावुक कर गये थे कि कुछ देर टालमटोल के बाद फिर कुछ आवश्यक मातृसुलभ निर्देशों के बाद मुझे उसके साथ जाने की अनुमति दे दी।

दो घंटे का हवाई सफर और दो घंटे की सड़क यात्रा करके हम मृत पिता के पास पहुँचे। पूर्णेन्दु पिता के शव से लिपटकर सिर्फ इतना बोला–''पापा! अब मैं बिलकुल अकेला हो गया हूँ, मगर आप देख लेना पापा! मैं टूटूँगा नहीं। बस, आप मेरा यही आत्मविश्वास बनाये रखना।

पूर्णेन्दु ने पिता का अन्तिम संस्कार पूर्ण शास्त्रोक्त विधि से कराया और दो अधिकारियों की उपस्थिति में उनके कमरे को सील करा दिया। खुद बाहर बरामदे में जमीन पर चटाई बिछाकर सोने लगा। मैं कभी जमीन पर नही सोई थी, मगर पूर्णेन्दु के साथ जमीन पर चटाई बिछाकर सोने में एक अजीब सन्तुष्टि मिलती। मैं उसे मौन सन्देश देना चाहती थी कि मैं मेरी संवेदना सहित पूरी तरह उसके साथ हूँ।

तीसरे दिन पूर्णेन्दु की मम्मी और दोनों भाई और भाभियाँ आ पहुँचा। उसकी माँ ने मुझे घूरकर देखा, तो पूर्णेन्दु ने उन्हें कुछ बोलने के पहले ही लपक लिया–लिसन प्लीज! शी इज माइ गेस्ट एण्ड फ्रेंड। यू नीड नाट टु थिंक एवाउट

हर. फिर भाइयों की ओर मुखातिब होकर बोला– आप लोग जल्दी से जल्दी तीसरे दिन से पहले यहाँ नहीं पहुँच सकेंगे, यह पता था, इसलिये इन्हीं की जमानत पर मिले रुपयों से ही यहाँ आना हो सका। इस छोटे–से शहर में तीन दिन शव रखने का इंतजाम भी नहीं हो सकता था। यह बात यहाँ के अधिकारियों ने ही बतला दी, तो पापा का अन्तिम संस्कार उसी दिन ही करना पड़ा। पापा की बॉडी के अलावा मैंने किसी चीज को हाथ नहीं लगाया है और उसके बाद दो गजेटेड आफिसर्स की विटनेस में कमरे को सील करा दिया था। अन्तिम संस्कार करनेवाला जमीन पर सोता है, सो यहाँ बरामदे में ही सारा काम चल जाता है। आपलोग अधिकारियों से मिलकर सील खुलवा लें या डाक बंगले में रुक लें। कमरा खुले तो पापा के पैसे, एकाउण्टस, पास बुक वगैरह चैक कर लें।

पूर्णेन्दु की बात सुनकर उसके बड़े भैया बोले– पून्नो! माँ से ऐसे बोलते हैं क्या?तू कबतक नाराज रहेगा?तेरे अन्दर इतनी कड़वाहट क्यों है?कहकर उन्होंने बड़े स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रखा, तो पूर्णेन्दु बोला–मैं न तो किसी से नाराज हूँ, न मेरे मन में कोई कटुता है। फिर शायद पिता की याद करते भावुक हो रही आवाज खाँसी में छिपाते हुये बोला–पूजा का समय हो गया है, मैं पण्डित को बुलाने जाता हूँ, कहते हुए बाहर निकल गया।

तेरह दिन बीत गये, श्राद्ध कर्म पूर्ण हो गया, तो उस दिन शाम को पूर्णेन्दु के बड़े भाई ने उसे अपने पास बिठाकर कहा पून्नो! हमलोग तो बाहर हैं, वापिस लौटना अब होगा भी नहीं, यह पागलपन छोड़ो, अब अपना घर मकान सँभालो अपने घर में रहो, लाखों की सम्पत्ति है आखिर।''

पूर्णेन्दु भाई बात सुनकर बिल्कुल निर्विकार भाव से बोला–भैया! मकान मालकिन ने तो घर से पापा के सामने ही निकाल दिया था, इसलिये अब उस घर में मेरे वापस जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। आपलोग उसे किराये पर दें, उसे बेच दें, मुझे न तो उसमें कोई हिस्सा चाहिये और न... कहते–कहते उसकी आवाज आक्रोश में काँपने लगी, तो मेरी तरफ मुड़कर बोला–तुम अपने कपड़े वगैरह रख लो। अभी निकलेंगे, तो दो घंटे का सड़क–मार्ग तय करके रात को नौ बजे की फ्लाइट मिल जाएगी। फ्लाइट की टिकट मैंने अरेंज कर ली है।

वहाँ से लौटने पर पता चला कि मेरे पिता को बड़े भाई ने अपने प्रभाव से किसी अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी के अस्पताल में सरकारी नौकरी से अधिक तनख्वाह और सुविधाओं की खातिर नियुक्त करवा दिया है, तो नई जगह होने और पापा की बेहद नियमित दिनचर्या का क्रम यथावत् रख सकने के लिए माँ भी साथ जाने को है। मगर मेरा एम.ए. का अन्तिम साल होने के कारण मुझे यहीं हॉस्टल में रहकर साल पूरा करने का प्रबन्ध भी भैया ने करा दिया है।

मैं भी पापा के साथ जाना कहाँ चाहती थी। मैं तो अब पूर्णेन्दु से दूर होकर उसे अकेला नहीं होने देना चाहती थी। मुझे बार–बार उसके पिता के शब्द याद आते रहते थे–बेटी! अब तुम ही पून्नो का ध्यान रखना और पूर्णेन्दु जिस तरह अधिकारपूर्वक अपनेपन से बात करता था, मुझे अच्छा लगता था।

उस समय नौकरी मिलना मुश्किल नहीं था और इंग्लिश लिट्रेचर में एम.ए. तो लगभग जॉब की गारण्टी होती थी। हमें भी अपने महानगर के प्राइवेट कालेजों में लेक्चररशिप मिल गई। उस दिन शाम को पूर्णेन्दु मेरे घर आया और तीन सौ रुपये मुझे देकर बोला– अभी केवल तीन सौ रुपये महीने के हिसाब से वापस कर पाऊँगा। मगर जल्दी ही एक दो ट्यूशन भी पकड़ लूँगा, तो कुछ ज्यादा रुपये हर महीने वापस कर सकूँगा। वैसे भी लगभग एक साल हो गया ,तुम्हें सूद का कितना नुकसान हो गया। कहकर वह फीकी हँसी हँसा।

पूर्णेन्दु की बात सुनकर मैं स्तब्ध हो गई और बड़ी मुश्किल से बोल पाई–पूर्णेन्दु! मैं कोई सूदखोर बनिया नहीं हूँ और मेरे–तुम्हारे बीच ये मेरा–तेरा कबसे हो गया?वैसे भी यह पैसे तुम्हारे ही थे। ताऊजी (पूर्णेन्दु के पिता) समय–समय पर तुम्हें देने के लिए देते रहते थे। शायद इतने ही रुपये अभी आलमारी में और पड़े होंगे। तुमने एक बार पैसा लेने से मना कर दिया था, सो आगे तुमसे कहना बेकार था, इसलिये तुम्हें पैसे नहीं दिये और ताऊजी आहत नहीं हो, इसलिये उन्हें मना नहीं किया, तो पैसे तो तुम्हारे ही है।, इसलिये पैसे वापिस लेने का प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है?

मेरे उत्तर पर पूर्णेन्दु ने बड़ी ही सरलता से कहा–'देखो ये पैसे तुम्हारे पास पापा की अमानत है, इसलिये पैसे तो तुम्हें वापस लेने ही होगे। पूर्णेन्दु से बहस करना बेकार है, यह सोचकर मैंने पैसे रख लिये।

दो साल बीत गये। जिन्दगी एक ढर्रे पर चल रही थी। तभी एक और मोड़ आया जीवन में। कॉलेज की दो लेक्चरर का सिलेक्शन केन्द्र सरकार की अन्य प्रशासनिक सेवाओं में हो गया। उनकी विदाई पार्टी में प्रिंसिपल ने मुझसे कहा–तुम भी ट्राइ क्यों नही करती?अभी तो यूनिवर्सिटी से निकली ही हो, अकेली भी हो, ट्राइ करो।

मैंने पूर्णेन्दु से बात की कि मैं इस साल में यू.पी.एस.सी. की परीक्षा देना चाहती हूँ, तो सुनकर एक दफा तो वह पता नहीं क्यों थोड़ा उदास हो गया, मगर फिर तुरन्त ही बोला–'अरे! हाँ जरूर दो यह परीक्षा। तुम्हारी जैसी टेलेण्टेड यूथ का यहाँ लड़कियों में सिर खपाने से तो तुम्हारे टेलेण्ट का अवमूल्यन ही होगा।'

मैंने उसे भी परीक्षा के लिये आवेदन करने को कहा, तो वह बोला–'देखो, टीचिंग मेरा जॉब नहीं हॉबी है, प्रोफेशन नहीं पेशन है। मैं इसमें खुश हूँ।

पापा से फोन पर बात हुई, तो उन्होंने तो भरपूर समर्थन करते हुए कहा–दिल्ली में उनका एक दोस्त है, वह उन्हें फोन कर देगा।उनके पास तीन महीने रहकर आराम से तैयारी करना। बड़ी जगह में ऐसी परीक्षाओं के लिए ज्यादा सुविधाएँ और सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

पापा की बात खतम होते ही पूर्णेन्दु बोला–''किसी परिचित या रिश्तेदार के यहाँ रहोगी, तो उनकी फार्मेलिटीज के बंधन में स्वतंत्रता से रह ही नहीं पाओगी, तो तैयारी क्या खाक करोगी। उसके बाद जीवन भर अहसान मानना सो अलग। मैं जे.एन.यू. के गेस्ट हाउस में इन्तजाम करवा दूँगा। वहाँ लाइब्रेरी और स्टूडेंट के साथ वातावरण से तैयारी में बहुत मदद मिलेगी।

पूर्णेन्दु ने मेरे रहने का इन्तजाम करा दिया और वहाँ रहकर मुझे लगा कि पूर्णेन्दु का कहना सच ही था। यहाँ रहकर जो तैयारी हुई, तो मुझे अपने सिलेक्शन की पूरी उम्मीद हो गई और मेरा सिलेक्शन भारतीय राजस्व सेवा में हो गया, मगर मेरिट के आधार पर होम स्टेट काडर नहीं मिला।

मेरी पहली पोस्टिंग एक अन्य प्रदेश के जिस नगर में हुई, वह हमारे वर्तमान नगर से छ–सात घंटे के ट्रेन–सफर की दूरी पर था। मेरे रवाना होते समय पूर्णेन्दु मुझे विदा करने स्टेशन पर आया, तो पहली दफा उसकी आँखों में एक विषाद की शायद अकेलेपन की एक छाया दिखाई पड़ी। अब मुझे अहसास हुआ कि मैं पूर्णेन्दु को अकेला छोड़ रही हूँ, सोचकर मेरा मन अपने प्रति एक धिक्कार भाव से भर गया। मगर पूर्णेन्दु तो अपने भाव छिपाकर ट्रेन चलने तक एक अभिभावक की तरह मुझे निर्देश देता रहा.

पूर्णेन्दु मुझे पत्र लिखते और मुझे हमेशा उनके पत्र की प्रतीक्षा रहती। जबकि ज्यादातर बातें वही होती थी–वहाँ अपना ख्याल रखना। नये काम के जोश में अपनी ओर ध्यान देना मत भूलना। वहाँ हरा नारियल खूब मिलता है, नारियल पानी से रूप और त्वचा में निखार आता है और मीठा नारियल पियोगी तो स्वभाव भी मीठा रहेगा। पढ़ते–पढ़ते मेरी आँखो में आँसू आ जाते थे–तुम्हें मेरा इतना ख्याल है पूर्णेन्दु! और मैं तुम्हें अकेला छोड़ कर आ गई–अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने। मगर उस समय तो तुमने भी उस महत्वाकांक्षा को पंख दिये थे। रोका नहीं था उड़ान को। क्यों नहीं रोका पूर्णेन्दु! एक बार तो पूरी तरह अधिकार से मना करते। एक बार तो कहते कि तुम मेरे बिना अकेले हो जाओगे। तुमने क्यों नहीं कहा पूर्णेन्दु!

शुरू के दो तीन सालों में जब कभी दो–तीन दिन के अवकाश का संयोग मिलता, पूर्णेन्दु के पास आ जाती थी मिलने, और उनके कॉलेज के अवकाश के दिनों के लिए अपना अवकाश सुरक्षित रखती कि उन दिनों एक डेढ़ सप्ताह पूर्णेन्दु के साथ रहने का सुख मिल जाये।

पूर्णेन्दु के साथ रहकर एक अजीब–सा सुकून मिलता था। वापस जाने पर मैं सोचती–ये कैसा रिश्ता है, जिसकी डोर से बँधी हुई मैं पूर्णेन्दु की तरफ खिंची चली आती हूँ। न कोई पारिवारिक रिश्ता है, न सामाजिक और शारीरिक तो

बिलकुल ही नहीं। पूर्णेन्दु ने कभी शालीनता और मर्यादा की सीमा को पार करने का प्रयास तो दूर, मुँह से कोई ऐसी बात तक नहीं की थी।

इधर समाज और परिवार के शुभचिन्तक जरूर उंगली उठाने लगे थे। मेरी भाभी ने ही कह दिया था–देखो बीबी! अच्छा है तुम दोनों शादी कर लो। आखिर आप किस रिश्ते से एक जबान आदमी के साथ इस तरह अकेले रह लेती हो, हमारे भी आगे लड़की है। यहाँ घर आने के लिए तो आपके पास छुट्टियों की कमी का बहाना होता है, पर वहाँ जाने के लिए छुट्टी खूब मिल जाती है।

इस तरह की बातों से तंग आकर मैंने एक दिन पूर्णेन्दु से कहा–''पून्नो! अपन शादी कर लें, तो...

क्यों?पूर्णेन्दु ने एकदम प्रश्न कर लिया तो मैं सिटपिटा गई। मुझे सिटपिटाया देख पूर्णेन्दु बोले–''क्या जरूरी है कि मैं सिर पर साफा, कमर में तलवार बाँधकर, घोड़े पर सवार होकर एक योद्धा की तरह तुम्हारे घर आऊँ और तुम्हें ले जाकर अपने घर में बिठा दूँ। फिर वह वातावरण को सहज करने के लिए–उसके बाद रोज शाम को घर की क्राकरी शहीद हो, कहकर हँस पड़ा।

''तुम समझते क्यों नहीं, मेरी मजबूरियों को?'' मैंने आहत होकर कहा, तो पूर्णेन्दु बोले–''तो मत आया करो। देखो, मेरे–तुम्हारे बीच केवल एक भावना का ही तो रिश्ता है। यह तो जीवन भर निभता रहेगा–कम से कम मेरी तरफ से तो तुम अपने परिवारवालों की बात मानकर किसी अच्छे स्टेटस के लड़के से शादी कर लो।''

''और तुम! तुम रह लोगे मेरे बिना?'' मैंने उसी आहत स्वर में पूछा। मेरा प्रश्न सुनकर पूर्णेन्दु थोड़ी देर चुप रहा, फिर उदास स्वर में बोला–''कह नहीं सकता, जो हुआ ही नहीं, उसे कैसे बताऊँ?हाँ, तुम आती हो तो बहुत अच्छा लगता है। जितने दिन साथ रहती हो, लगता है वह दिन जीवन की धरोहर में अतिरिक्त पूँजी बनकर जुड़ जाते हैं। तुम जाती हो, एक अजीब उदासी, एक सूनापन छा जाता है और तुम्हारे फिर से आने का इन्तजार रहता है। मगर यह सब क्यों है?मेरे–तुम्हारे बीच कैसा रिश्ता बन गया है, कह नहीं सकता?कहकर वह खामोश हो गया।

इस बात को पन्द्रह साल बीत गये। हमारे बालों में चांदी के तार चमकने लगे, पूर्णेन्दु ने पीएच.डी. कर ली और आँखो पर मोटे लेन्स का चश्मा चढ़ाये कॉलेज के प्रिंसिपल हो गये, एक दो कमरे का छोटा–सा मकान भी बनवा लिया था।

कुछ समय से मैं पूर्णेन्दु के व्यवहार में एक परिवर्तन नोट करने लगी थी। अब पूर्णेन्दु न तो मेरे साथ पहले की तरह अनौपचारिक–उन्मुक्त होकर बैठते थे और लम्बी तकरीरें तो बंद ही हो गई थी और खाना खाने को तो किसी न किसी बहाने मना ही कर देते थे।

मैंने एक दो बार कहा–पून्नो! पहले तुम कॉलेज कैम्पस में रहते थे, तो मैं तुम्हारे साथ रुकती थी। अब तुमने अपना घर बनवा लिया है, तो मैं गेस्ट हाउस में रुकूँ। यह तो बड़ी अजीब बात हुई, तो फीकी–सी हँसी हँसकर बोले–वहाँ घर काफी बड़ा था। यह छोटा–सा मकान है और अब प्रिंसिपल बन जाने से लोग–बाग कभी भी मिलने चले आते हैं, तो तुम डिस्टर्ब होओगी। बस, यही बात है। फिर चुहल–सी करते हुए बोले–अब तुम बड़ी अफसर बन गई हो, बड़े शहर के बड़े फ्लेट्स में रहने की आदत हो गई होगी, मेरे इस दो कमरे के बेतरतीब–से मकान में तुम्हें तकलीफ होगी, तो तुम्हारे रहने का इंतजाम तो ठीकठाक–सा करना मेरा फर्ज बनता है और पास ही तो है तुम्हारा गेस्ट हाउस...

सुनकर मेरी आँखों में आँसू बहने लगे, तो पूर्णेन्दु बोले– मैंने तुमसे एक ही वादा लिया था और तुम उसे भी नहीं निभा रही हो, तुम आँसू बहाओगी, तो मुझे दृढ़ता का सम्बल कौन देगा, कहकर मेरी ओर देखा। मगर मुझे अब भी आहत देखकर बोले– अरे! भाई मैं तो मजाक रहा था, मजाक भी नहीं कर सकता क्या?अब मजाक करने कहाँ जाऊँ?कहकर पूर्णेन्दु हँसने लगे, तो मुझे भी मुस्कराना ही पड़ा और बात आई–गई, हो गई और अवसर मिलते ही मेरा आना और गेस्ट हाउस में रहना चलता रहा।

होली की छुट्टी में अबकी बार आई तो पूर्णेन्दु के व्यवहार के बारे में स्त्री सुलभ सन्देह से पूर्व निर्णय के अनुसार मैं एक दिन अचानक उनके घर पहुँच गई। नौकर मुझे पहचानता था, इसलिये उसके कहने पर कि साहब घर पर नहीं है, मैं उनका इन्तजार करने की, कहकर पूर्णेन्दु के स्टडी रूम में बैठ गई। समय काटने के लिए रेक से एक किताब निकाली, तो कुछ दवाइयों के रेपर्स बाहर निकल आये। शायद किताबों के बीच में छिपाकर रखे गये थे, तो क्या पूर्णेन्दु बीमार है, मगर उसकी बीमारी की बात मुझे नहीं मालूम हो, इसलिये मुझे अपने घर लाने को एवाइड करते हैं, सोचकर मैं दु:खी हो गई।

मैंने नौकर से पूछा, तो पहले तो वह टालमटोल करते हुए बोला–मेडम! हम ज्यादा पढ़े–लिखे नहीं हैं, इसलिए हमें नहीं मालूम, मगर जब मैंने अपने उच्चपद की नौकरी के आधार पर उसके भाई को किसी अच्छी कम्पनी में नौकरी दिलवाने में मदद का आश्वासन दिया, तो उसने राज खोला– मेडम! साहब को आँतो की कोई गम्भीर बीमारी है। खाना बिलकुल रूखा–सूखा, दो–एक फल का है। अरे! खाने से ज्यादा तो दवाई खाते हैं, फिर भी जब दर्द उठता है, तो डाक्टर साहब आकर इन्जेक्शन दे देते है, फिर एक दो दिन में साहब सब कामकाज पहले की तरह करने लगते हैं। बड़े जीवटवाले हैं। सुना है पूरा खानदान डाक्टरों का है, पर आपके अलावा आता–जाता कोई नहीं है। ऐसे खानदान से तो आदमी अकेला भला। हाँ, मेडम! ध्यान रखना साहब ने आपको कुछ भी बताने से मना किया है।

मैंने उसे आश्वस्त किया और दवाइयों के रेपर्स और वह किताब रेक में वैसे ही रख दी।

पूर्णेन्दु आये, तो मैंने कहा–''पून्नो! मैं यहाँ ज्यादा से ज्यादा वक्त तुम्हारे साथ बिताने आती हूँ, गेस्ट हाउस में रहते हुये लगता है, मैं वहीं हूँ दूसरे प्रान्त के एक अनजान से शहर में तुमसे दूर। वहाँ का खाना अकेले खाते मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। अब मेरी छुट्टी खतम होने को आ रही है, तो बचे हुए यह कुछ दिन तो इस बेतरतीब से मकान में अपने साथ रहने का सुख अनुभव करने दो ना! मुझे खाना बनाने का अवसर भी दो, जिससे देख सकूँ कि आम औरत की तरह खाना बना सकती हूँ या नहीं।' सुनकर पूर्णेन्दु बोले–''अरे तुम्हें यहाँ तकलीफ होगी, मेरी दिनचर्या बेहद इररेगुलर है और खाना बाना भी। तुम एक दो दिन के लिये क्यों परेशान होती हो। कहकर पुर्णेन्दु ने मुझे बेहद उदास नजरों से देखा।

इस परेशानी में ही मुझे जो सुख मिलेगा, उसे बता तो नहीं सकूँगी। बस मेरी इतनी सी बात मान लो। क्या मैं तुमसे एक बात मानने को भी नहीं कह सकती। कहकर मैंने बेहद बेबसी से पूर्णेन्दु की ओर देखा, तो पूर्णेन्दु के मौन को स्वीकृति मानकर अपना सामान गेस्ट हाउस से मँगा लिया। मैंने चुपके से अपनी छुट्टी दो सप्ताह बढ़ाने का टेलीग्राम भी दिलवा दिया।

दो दिन आराम से गुजर गये। तीसरे दिन मुझे पूर्णेन्दु सुबह से ही कुछ उदास, कुछ बैचेन लगे। मैंने कई बार पूछा, मगर हँसकर बोले– अरे यार! अब प्रिंसीपल हूँ पोस्ट ग्रेजुऐट कॉलेज का–तो घर में भी थोड़ा गम्भीर रहने की प्रैक्टिस कर लेता हूँ। मौका मिलने पर नौकर ने चुपचाप बताया कि दर्द हो रहा होगा, मगर मेरी मौजूदगी में डॉक्टर को बुलाना नहीं चाहते।

सुनकर मैं बहुत दु:खी हो गई। नाश्ता करके मैंने कुछ पुराने मित्रों से मिलने का बहाना करके तीन चार घण्टे में वापिस लौट आने की कहकर पूर्णेन्दु को अकेला छोड़ दिया। लौटकर आने पर पूर्णेन्दु काफी ठीक–सा लगा, तो मुझे असीम सन्तोष हुआ। अब मैंने निश्चय कर लिया कि कल तक किसी न किसी तरह पूर्णेन्दु को बता दूंगी कि मुझे उसकी बीमारी के बारे में पता चल गया है और मैं उसे अपने साथ लेकर बम्बई जाऊंगी, उसका इलाज कराऊँगी, उसकी सेवा करूँगी। मगर यह सब हो ही नहीं सका।

रात का अन्तिम पहर था जब अचानक मेरी नींद खुली तो मैंने देखा, पूर्णेन्दु का बिस्तर खाली है। नाइट लैम्प की धुंधली रोशनी में मैंने देखा–कमरे का दरवाजा खुला है और टेलीफोन की डोरी दरवाजे से की और जा रही है। मैं दबे पाँव आकर दरवाजे के पास खड़ी हो गई।

हवा में फागुन की ठंड थी, अगले दिन होली थी। पूर्णेन्दु ने कम्बल ओढ़ रखा था। वह शायद अपने डाक्टर से बात कर रहे थे–दो दिन और निकाल दो डाक्टर–––मैं अपनी बीमारी की खबर देकर उसे दु:खी नहीं करना चाहता–––होली के एक दिन बाद वह चली जायेगी–––––नहीं कोशिश करूँगा कि मैं ही क्लिनिक पर आकर इन्जेक्शन ले लूँ। हाँ, दर्द अब भी है, मैं वह

पेनकिलर का डोज बढ़ाकर ले लेता हूँ–––अच्छा––कहते–कहते पूर्णेन्दु हाँफने लगे और पता नहीं दर्द की अधिकता से या निर्बलता से वह लड़खड़ाने लगे, तो मैंने उन्हें थामा और अधीर होकर बोली– तुम्हें क्या हुआ है पूर्णेन्दु! तुम मुझसे क्यों अपनी बीमारी छिपा रहे हो?मुझे इतना पराया कैसे कर दिया तुमने, कहते हुये मेरी आवाज रूँध गई। अबतक उनका तत्पर सेवक आ गया, उसने सहारा देकर बिस्तर पर लिटा दिया और डाक्टर को फोन कर दिया।

डाक्टर के इंजेक्शन से लगा कि पूर्णेन्दु को आराम आ गया है। उसकी पलकें मुँद गई, तो डाक्टर ने कहा–देखिये पूर्णेन्दु का इलाज तीन साल से कर रहा हूँ, इसलिये वह मेरा दोस्त बन गया है। आपके बारे में अक्सर बातें करता है। फिर कहता है–देखो, उसे मत बताना। उसे बहुत दुःख होगा, मैं उसे दुःखी नहीं देख सकता। मगर अब आपको बताये देता हूँ–हालाँकि अब ज्यादा कुछ नहीं हो सकता, मगर अगर इन्हें टाटा हास्पीटल ले जाया जाये, तो हालत कुछ सुधार जरूर सकती है।

मैंने तुरन्त निश्चय कर लिया कि होली के तुरन्त बाद पूर्णेन्दु को लेकर बॉम्बे चली जाऊँगी। उसका इलाज कराऊँगी। लम्बी छुट्टी ले लूंगी. मगर अपना सोचा होता कहां है।

डाक्टर के जाने के एक डेढ़ घंटे बाद पूर्णेन्दु की चेतना लौटी, तो वह फिर दर्द से परेशान था। पीड़ा इतना अधिक थी कि वह यह भी नहीं बता पा रहा था कि दर्द आखिर है कहाँ. उसका सारा शरीर पसीने से भीग रहा था।

मैंने फोरन नौकर को दुबारा डाक्टर को बुलाने के लिये कहा और उसका सिर गोद में रखकर बोली–पूर्णेन्दु! तुमने तो मुझे इतना पराया कर दिया कि अपनी बीमारी के बारे में भी नहीं बताया, पर डाक्टर ने मुझे सब कुछ बता दिया है। बस दो दिन थोड़ी तकलीफ और बर्दाश्त कर लो। होली के बाद ही मैं तुम्हें लेकर बॉम्बे चलूँगी, तुम्हारा इलाज होगा, तुम ठीक हो जाओगे।

अचानक पूर्णेन्दु ने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोला–खिड़की को पूरा खोल दो, करवट लेने में मेरी मदद करो, मैं इस डूबते चाँद को जी भरकर देखना चाहता हूँ। अवसान के समय वस्तु में एक अद्‌भुत–परिपक्व सौन्दर्य की आभा होती है, क्योंकि एक पूरी जिन्दगी जी लेने का अहसास होता है उसमें।

''पुन्नो! कल होली है, तुम पूर्णिमा का चाँद देखना।

समय बहुत कम है, जैसा कहता हूँ, वैसा करो। मेरी होली तो हो–ली––जो बीत गई, सो बात गई। हाँ, देखो मेरी मौत पर आँसू मत बहाना। वैसे मैं तुम्हें जाते हुए भी दुःख ही देकर जा रहा हूँ। मैंने मृत शरीर मेडीकल कालेज को डोनेट कर दिया है उन्हें सूचित कर देना। मैं नहीं चाहता कि मृत शरीर को भस्म करने के लिये एक पेड़ की होली हो। इस मकान को मेरे जैसे 'अनाहूत' लोगों का 'एसाइलम' बना देना। अच्छा–कहते हुए पूर्णेन्दु ने मेरा हाथ और भी कसकर थाम लिया।

पूर्णेन्दु द्वारा जीवन में पहली बार मेरे हाथ को इतना कसकर पकड़ने की अनुभूति लिये पता नहीं कितनी देर जड़ सी बैठी रही। पूर्णेन्दु के डाक्टर के आने से मेरी तन्द्रा भंग हुई। वह कह रहे थे–आप अपने को सँभालिये। पूर्णेन्दु की बॉडी को मेडीकल कालेज भिजवाने की व्यवस्था कल होली की वजह से नहीं हो पाएगी, इसलिये कम से कम दो दिन के लिए व्यवस्था करनी होगी। तबतक आप रुक जाएँ, तो अच्छा होगा–कहकर डाक्टर ने अपने आँसू छिपाने के लिए अपना चेहरा दूसरी तरफ घुमा लिया।

थोड़ा संयत होकर पुर्णेन्दु की खुली आंखों को हाथ से बन्द करते हुये मंत्रोच्चार जैसे स्वर में बुदबुदाये–पूर्णेन्दु! ''यू रियली हेपन टु बी ए होली सोल'' तभी तुमने जिन्दगी के इतने बड़े दर्द को हो–ली मानकर विस्मृत किया और जिन्दगी को होली के उमंग उल्लास से भरे जिन्दादिल आदमी की तरह जिया और दूसरों को इसी तरह जीने की प्रेरणा दी। यू आर रियली ग्रेट. भगवान तुम्हारी आत्मा को शांति दे, कहते हुए डाक्टर आकाश की ओर हाथ उठाकर प्रार्थना में लीन हो गये.

डायरी पुरानी थी, कहानी पुरानी थी, मगर यहाँ पर टपके आँसू पुराने नहीं थे और आनन्दजी इन्हीं आँसुओं में डूबने लगे थे।

कविता

खिड़की और दरवाजे

पूनम शुक्ला
मान्जलपुर, बदोदरा
गुजराज

खिड़की और दरवाजे
झाड़ते पोंछते
पता ही नहीं लगा
कि कब खुल गयीं खिड़कियाँ
कब खुल गए दरवाजे
मेरे लिए
रात–रात भागती कुम्हारिन
कभी पिशाचिनी बनती
तो कभी बच्चों को
उठा ले जानेवाली डायन
अँधेरे में टॉर्च और लाठी
नंगी आँखें सिर्फ एक और
की देह पर तलवार के
घार करती

खदेड़ दिया जाता है उसे
उसके हक से बाहर
बचती है व्यवस्था
जो पूरी तरह खिलाफ़ है
उसके औरत होने पर
एक दिन उसकी आँखों ने
चाहा था एक स्वप्न
कि भयभीत हो गई थी व्यवस्था
चंद लोगों की मनसा ने
उसके भीतर के मैं को
तहस–नहस किया
कि अब उसी की संगी साथी भी
वही स्वप्न देख रही थीं मैं उन आँखों को
तूल दे रही थी
कि दिखा रही थी अँगीठी
मेरा भी होना था

वही हश्र
घसीटकर लाया गया मुझे
चौखट के भीतर पटक दिया
दरवाजों ने मेरा साथ दिया
मैं अकेली नहीं थी
मेरे साथ थी भीड़
जो खड़ी थी सत्ता के खिलाफ़
कि उनका कहीं पता नहीं था।

कहानी

सवाब

डॉ. आरके नीरद,
वरिष्ठ पत्रकार,
प्रभात खबर, राँची/दुमका
दुमका, 8789087471

सलीम को रातभर नींद नहीं आयी। फज़र की नमाज के पहले ही वह नहा–धोकर फारिग हो गया। नये कपड़े पहने। जालीदार टोपी पहनी। गले में हरा रेशमी रूमाल बाँधा। इत्र लगाया और बड़े जतन से जोड़कर रखे पैसे कुर्ते की जेब में डाले कुछ देर छोटे भाई के साथ घर में उधम मचाया। तबतक उजाला हो गया। वह अम्मी के गले लगा और घर से भागकर निकला। उसकी उम्र के दूसरे बच्चों का भी यही हाल था। सभी पासवाले आम के बगीचे में पुराने कुएँ के पास जमा हो गये एक–एक कर। अनवर, मुजामिल, मकीम, शाहिल, महबूब, फिरदौस और जाने कौन–कौन जुट गये। सबमें एक तरह की जल्दी थी, बेचैनी थीं कोई एक जगह थोड़ी देर भी टिक नहीं रहा था। कभी इस ओर, तो कभी उस ओर। कोई ईंट उठाकर धपाक से कुएँ में डाल रहा था, तो कोई बेमतलब पेड़ पर ढेले फेंक रहा था। किसी को किसी की सुनने की फुर्सत नहीं थी। सब एक साथ बोले जा रहे थे। आठ बजे के करीब सभी ईदगाह में जुटें वहाँ इमाम ने दो रक़ात नमाज़ पढ़वायी। पहली रक़ात में तक़वीर तहरीमा कही। खुतबा भी दिया। वहाँ से लौटकर बाकी बच्चे या तो घर जा पहुँचे या फिर मसज़िद गली में बाकी बच्चों के साथ खेल में मशगूल हो गये।

सलीम को इस दिन का जाने कबसे इंतजार था। वह सीधा प्रोफसर वशीर के कैंपस में दाखिल हुआ। हरी–भरी मखमली घास के चारों और फलों की क्यारियाँ और रंग–रंगराये फलों से लदे गमले। इन्हें बड़े जतन से प्रोफेसर साहब की बीवी ने खास आज के दिन के लिए तैयार किया था। गेट की बायीं ओर स्प्रिंगवाला झूला। उसपर कत्थई रेशमी गिलाफ में भरे गुलगुल मसनद धरे पड़े थे। झूले के दोनों बाजुओं में बेंतवाली गद्दीदार कुर्सियाँ। घर के हर हिस्से में खुशी बरकत हो रही थी। सलीम को यह नयी दुनिया जैसी लग रही थी। वह भूल गया कि वह एक मामूली दर्जी का बेटा है, जिसके जूते नये, मगर बेहद सस्ते हैं। उसने जो इत्र लगा रखा है, वह भी बेहद सस्ता है।

प्रोफेसर साहब के 1 0 साल के बेटे की नजर उसपर पड़ी। वह दौड़कर उसने अपने साथ ले गया। प्रोफेसर साहब की बीवी ने उसे खाने को सेवइयाँ दीं। फिरनी, मालपुआ, गलौटी और कोरमा भी। फल भी दिये और शरबत भी। वह काफी देर तक सब कुछ खाता रहा। नजरें एक–एक चीज में धँसी जा रही थीं। प्रोफेसर साहब का बेटा, जो कभी उसके साथ नहीं खेला, आज बड़े प्यार से बतिया रहा था। उसने अपना नया वीडियो गेम उसे दिखाया और दोनों देर तक गेम को लेकर हँसते रहे।

करीब घंटे भर बाद प्रोफेसर साहब कहीं बाहर से आये। उन्होंने एक नजर सलीम पर डाली। लड़का महल्ले का ही था। लिहाजा वह उसे पहचानते थे। सलीम ने बड़े अदब से उन्हें आदाब किया। प्रोफेसर साहेब मुस्कुराये और उसके सर पर हाथ फेरा। उन्हें मुबारक अली, जो शहर के दूसरे मुहल्ले में रहते थे, के घर जाना था। उन्होंने अपनी कार निकाली। सलीम उनके करीब चला गया।

'चच्चा जान! हम भी आपकी करवा में बैठ जाएँ, उधर ही हमको भी जाना है। छज्जू के घर।'

सलीम ने बड़ी हसरत भरी आवाज में इतनी–सी बात कही। प्रोफेसर वशीर इस प्रस्ताव के लिए तैयार नहीं थे। हड़बड़ा गये। बोले, 'सो तो ठीक है, सलीम! मगर गाड़ी में जगह कहाँ है?कहकर खुद की झेंप गये। गाड़ी पूरी खाली थी। जगह ही जगह थी, मगर जिस रुखाई से उन्होंने यह बात कही, उसके आगे सलीम को कुछ और कहने या पूछने की हिम्मत नहीं हुई। वह उदास हो गया, मगर दूसरे ही पल एक अजीब–सी खुशी में डूब गया, जिसकी कोई ठोस वजह उसे भी मालूम नहीं थी। वह सारा दिन वहीं डोलता रहा। दो बार सकीना, जो उसे तीन साल बड़ी थी और फरजंद, जो दो साल छोटा था, उसे बुलाने आ चुका था। अशरफी भी, जो उसकी माँ थी, दो बार बुलाकर बैरंग लौट चुकी थी। अबतक प्रोफेसर लौट आये थे।

कई मेहमान आये और चले गये। खुले दिल से सबकी खातिरदारी होती रही। पूरी दरियादिली थी। सवाब (पुण्य) बरसता रहा। सलीम भी अपने हिसाब से खातिरदारी में हाथ बँटाता रहा। पहले तो प्रोफेसर साहेब की बीवी ने उसे ऐसा करने से यह जानकर रोका कि मेहमान जानें, क्या सोचें, दूसरे के घर का बच्चा है, मगर बाद में सहूलियत के आगे उसे कबूल कर लिया। सूरज आसमान के दूसरे हिस्से के करीब जा पहुँचा था। सलीम अब भी वहीं डटा था।

अब प्रोफेसर साहब और उनकी बीवी को सलीम बोझ लग रहा था कि सलीम उनके हिस्से की हवा छीन रहा है और उनके फेफड़ों से हवा कम पड़ रही है। यह बात अब छुपी नहीं रह गयी और प्रोफेसर एवं उनकी बीवी में बिना कुछ बोले एक राय–सी बन चुकी थी कि सलीम को अब चला जाना चाहिए।

सलीम की माँ अशरफी एक बार फिर आयी और अपने शौहर यानी सलीम के अब्बू के गुस्से का खौफ जताकर उसे प्रोफेसर साहब और उनकी बीवी की इरादे का जरा भी अंदाज किये बगैर उन्हें आसमान भर दुआएँ देकर साथ ले गयी। वैसे अशरफी प्रोफेसर साहब तो क्या, उनकी बीवी से भी उम्र में छोटी थी, मगर गरीब औरतों में इस बात की बरक़त होती है, वह अपने से छोटी उम्र के बड़े लोगों के भी रिश्ते में बड़ी हो जाती हैं।

बहरहाल, घर पहुँचकर सलीम देर रात तक बस प्रोफेसर साहब के घर के किस्से सुनाता रहा। फ़रज़ंद आँखों फाड़–फाड़कर उसकी बातें सुनता था, गोया यह उसी महल्ले के किसी घर की न होकर किसी दूसरी जहां की बातें हों। यह बात दीगर थी कि सलीम के किस्से में कई किरदार उसकी मासूम सपनों के कतरे थे।

दूसरे दिन सलीम उठा, तो सीधा वहीं जा पहुँचा। आज वहाँ कल जैसी रत्तीभर भी बात नहीं थी। अहाते का गेट बंद था। बाहर एक कुत्ता ऊँघ रहा था। कुर्सियाँ सब उठा ली गयी थीं। चारों तरफ खामोशी पसरी थी। चौथे दिन भी वह सुबह–सुबह प्रोफेसर साहब के घर जा पहुँचा। गेट खुला था और पास ही कुत्ता सो रहा था। उसे देखते ही झपटा। बरामदे में प्रोफेसर साहेब का वही बेटा खड़ा था। उसने कुत्ते को लुलुआ दिया। कुत्ते ने सलीम की दायीं टाँग में दाँत गड़ा दिया। सलीम चीत्कार कर उठा। उसकी चीत्कार में इतना दर्द था कि सुननेवाला हर दिल भीग गया। रसोई के अंदर खिड़की के पास प्रोफेसर साहब की बीवी भी सहम गयी। भागकर लॉन में आ गया और वहीं ठिठक गया।

सलीम के पैर से खून की धारा फूट पड़ी। कुछ तो दर्द और कुछ डर से वह बहोश हो गया। भीड़ जुट चुकी थी।

'चोरी करने के चक्कर में यही होगा।'कहीं से आवाज आयी। 'कुत्ता ऐसे थोड़े काटा, भाँप गया था।'–दूसरी आवाज पहली आवाज पर सवार हो गयी। 'चार दिन से यह इसी ताक में था।'–अब कई आवाजें आपस में उलझ चुकी थीं। 'जो भी हो, जानवर का क्या भरोसा?' आवाजें अब दिशा तलाशने लगीं।

प्रोफेसर साहब की बीवी ने लंबी साँस ली। बेटे के कंधे पर उनका हाथ अनायास जा पहुँचा। बच्चे चिहुँका। एक बार माँ की ओर देखा और भागकर घर के अंदर दाखिल हो गया। लोगों ने सलीम को उठाकर अस्पताल पहुँचा दिया। पीछे से अशरफी, सकीना, उसकी फूफी और दूसरे लोग भी अस्पताल पहुँचे।

तेज बुखार से सलीम का शरीर तप रहा था। वह नीम बेहोशी में बड़बड़ाता रहा। 'अम्मी! शब्बीर चच्चा की कारवा में चढ़ा दो।' 'अम्मी! फुच्चन को टोपी तो देखो।' 'नहीं अम्मी! अभी रुको भी...नहीं–नहीं, अभी तुम जाओ....मैं फुच्चन के साथ अभी खेलूँगा...क्यों फुच्चन!'

फुच्चन वहाँ नहीं था। उस दिन की घटना के बाद से वह घर से निकलने से डरने लगा था। प्रोफेसर साहब ने बेटे की दिशा पर गौर किया और उसे नया म्यूजिक सिस्टम ला दिया।

उधर सकीना के आँसू बह रहे थे, मगर जुबान तालु से चिपका रहा। तीसरे दिन सलीम होशमंद हुआ। सकीना की, जो करीब–करीब दिन–रात उसके पास बैठी ही रही, जान में जान आयी। उसने उसके सर पर हाथ रखकर पूछा, 'अब जी कैसा है रे?' सलीम ने धीरे–धीरे आँखें कमरे के चारों और फेरीं, फिर माँ के चेहरे पर आँखें रोप दीं। कुछ बाद मरियल आवाज में पूछा, 'अम्मी! ईद फिर कब आयेगी?' सकीना, जो अबतक सब्र की गाँठ थी, बेटे को बाँहों में लपेट फफक पड़ी।

कहानी

मेहमान

डॉ. पिंकी कुमारी बागमार
खड़गपुर, जिला–प.मेदिनीपुर
मो0–9475004249

घर के आँगन में पंडाल बँध रहा है, चारो ओर हलचल, आस–पड़ोस के बच्चे पंडाल के लिए बँधे बाँस को पकड़कर झूला झूल रहे हैं। रमेश सब्जी की थैली नीचे रखते हुए आवाज लगाता है–कहाँ हो रीतेश की माँ! जरा एक गिलास पानी तो लेती आ! बहुत गर्मी है भई, ऊपर से इतनी तेज धूप। राधिका रसोई से आवाज देती हुई पानी का गिलास हाथ में पकड़े हुए आती। पानी का गिलास रमेश को देकर, वहीं थैली से सब्जी नीचे जमीन में फैलाकर बैठ जाती। सब्जी देखते ही वह रमेश से कहती–अरे! ये क्या आप इतनी सब्जी ले आए, रिया की शादी के लिए तो आप कल सब्जी बाजार करनेवाले थे न जी! और ये क्या आप इतनी सारी भिंडी! रमेश मुस्कुराते हुए कहता है, ये सब्जियाँ मेहमानों के लिए नहीं हैं पगली! मेहमानों के लिए तो कल बाजार करूँगा, जब मेरा बेटा आ जाएगा। ये सब सब्जियाँ तो मैं अपने बेटे और बहू के लिए लाया हूँ। बहुत दिनों बाद हमारा बेटा अपने घर आ रहा है बहू के साथ। तुम्हें तो पता है रीतेश को भिंडी की सब्जी बहुत पसंद है, इसलिए उसके लिए भिंडी ले आया और बहू को क्या पसंद है मुझे पता नहीं। बहू कभी हमारे साथ रही नहीं, तो उसकी पसंद, नापसंद जानने का मौका नहीं मिला। इसलिए बाजार में जो–जो सब्जी दिखी मैं उसे ले आया। इन सब्जियों में कोई–न–कोई सब्जी तो बहू को पसंद होगी। शादी में आनेवाले सभी मेहमानों से अपने बेटे–बहू को मिलवाऊँगा। बड़ी शान से बताऊँगा कि ये हैं रीतेश मेरा बेटा, जो बड़ी कंपनी का मैनेजर है और ये मेरी बहू, जो स्कूल में टीचर है। राधिका कहती–हाँ–हाँ मिला लेना, कहाँ बेटा, बहू के साथ एक छत के नीचे एक साथ रहने का सपना था हमारा, पर...। रिया हाथ में सूखे कपड़े पकड़े हुए नीचे आती और गुस्से से सारे कपड़े राधिका की ओर कुर्सी पर रखते हुए कहती, लो आपके बेटे–बहू के लिए नये–नये चादर धुलकर तैयार है। रमेश उसे कहता–अरे रिया बेटा! इतना गुस्सा क्यों हो?

रिया अपने भाई से नाराज है और हो भी क्यों न, अपनी छोटी बहन की सगाई में बड़ा भाई न आए, तो बहन का नाराज होना जायज है। हालाँकि हर बहन की तरह रिया भी अपने भाई का इंतजार कर रही थी, पर अपने इंतजार को छिपा वो अभी अपने भाई के प्रति अपनी नाराजगी दिखा रही थी। वो गुस्से में अपने माता–पिता से कहती है–

आपलोग जिसकी आने की इतनी तैयारी कर रहे हैं, वो आएगा नहीं और अगर आएगा भी तो ऐसे, जैसे हमपर कोई एहसान कर रहा हो। उसे हमारी परवाह होती तो मेरी सगाई में तो आता और नहीं आ पाया किसी वजह से तो कम–से–कम एक फोन तो करता, पर उसने नहीं किया। रमेश कहता–अरे! वो किसी काम में फँस गया होगा, बेटा! पर उसने मुझसे कहा है कि वो तेरी शादी में जरूर आएगा। उसकी ट्रेन खड़गपुर पहुँचनेवाली होगी, वक्त तो हो गया है। रिया कहती–उसने आपको बताया कि वो किस ट्रेन से आ रहा है?रमेश कुछ नहीं कह पाता, उसकी खामोशी सब कुछ कह देती है। वह अपनी जेब से अपना फोन निकालकर रीतेश को फोन लगाता–हेलो! हाँ, रीतेश बेटा कहाँ हो?कबतक पहुँचोगे?कल शादी है, याद है ना! हाँ, पापा! याद है। आप बार–बार फोन करके डिस्टर्ब मत किया करो, मैं अभी कंपनी की मीटिंग में हूँ। जैसे समय मिलेगा मैं आ जाऊँगा। राधिका चुपचाप खुद को सब्जियों में उलझाई, सर झुकाए सब सुनती रहती। रिया आँखों में आँसू लिये अपने कमरे में चली गई।

आज सुबह से ही घर में मेहमानों का आना लगा है। आज से रिया की शादी की रश्में शुरू हैं। रमेश ने 4–5 गाड़ी मेहमानों को स्टेशन से घर तक लाने के लिए लगा रखी है। जैसे कोई गाड़ी दरवाजे पर आती, रिया दौड़ते हुए जाती, ये सोचकर कि भैया आ गये। गाड़ी से सभी दूर–दूर से आए मेहमान उतर रहे, रिया सब मेहमानों के बीच जिसे खोज रही, वह इस गाड़ी में भी नहीं है। सबसे ज्यादा इंतजार रीतेश का रिया को है। बहुत प्यार करती है वा रीतेश से, पर अपने प्यार को छुपाकर वो अपने बड़े भाई से नाराज है। सारे मेहमान आ गए, पर अबतक रीतेश नहीं आया, सारे मेहमान रितेश को पूछ रहे हैं। शाम हो गई, सब सज गया, अब सभी भूमिपूजन के लिए निकलनेवाले हैं। रिया को अब भी इंतजार है अपने बड़े भाई का, अपनी माँ से आकर कहती है–माँ! थोड़ी देर रुक जाओ, शायद भैया–भाभी आते ही होंगे। सभी रीतेश का इंतजार कर रहे हैं। रिया की चाची ढोलक बजा रही है, सभी औरतें मिलकर शादी के मंगल गीत गा रही है, जिसपर कानपुर वाली बुआ और फूफा नाचने में मग्न हैं। रीतेश का इंतजार करते–करते रात के 10 बज गये, पर रीतेश नहीं आया और न वो अपने पिता का फोन उठा रहा। मेहमान तरह–तरह की बात कर रहे। कोई कह रहा, बच्चों को ज्यादा पढ़ाने से वो ऐसे ही माँ–बाप को भूल जाते हैं। कोई कह रहा कि शादी के बाद कोई भी माँ–बाप का नहीं होता, सब पत्नी का गुलाम बन जाते। रमेश– राधिका को सबकी बातें सुनकर ऐसे लग रहा, जैसे उनके दिल में कोई तीर मार रहा हो। अचानक रीतेश की गाड़ी आती है। राधिका दौड़कर लोटे में पानी ले आती है और बेटे–बहू के सर के ऊपर से घुमाकर पानी फेंकती है। सभी मेहमान रीतेश से कहने लगते, इतनी देर से आया अपनी बहन की शादी में, कबसे सब तेरा इंतजार कर रहे हैं। रीतेश के पिता उसे कहते हैं, जा बेटा! हाथ–मुँह धोकर तैयार हो जा रिया ने तेरे लिए रश्में भी रुकवाकर रखी हुई है। वो बावली कहती है–भैया–भाभी के आने के बाद ही रश्में करना। रीतेश और उसकी पत्नी प्रिया अंदर जाते हैं। रिया दौड़कर उनसे मिलने बाहर आती, वो नाराजगी दिखाती अपने भैया–भाभी से, उसकी शादी में वो इतनी देर से जो आए। रीतेश और प्रिया तैयार होकर रश्मों में शामिल होते हैं। सारी रश्में होने के बाद सभी खाने के लिए बैठते हैं। रिया के सभी चचेरे भाई–बहन मेहमानों को खाना खिला रहे, रीतेश कोने में कुर्सी लिये बैठा है, ऐसे जैसे वो किसी और के घर मेहमान बनकर आया हो। प्रिया अपनी सास के साथ–साथ हर काम में हाथ बँटा रही, साथ ही वो मेहमानों के खाने–पीने का भी ध्यान रख रही। रमेश, रीतेश से कहता–वहाँ क्यों कोने में अकेले बैठा है, यहाँ आ सबके साथ बैठ। रीतेश उठकर आता और अपने पिता से कहता–क्या एक गिलास पानी मिलेगा! रीतेश उस ओर आश्चर्य भरी नजरों से देखता है, रमेश के पास बैठे सारे रिश्तेदार कभी रीतेश तो कभी रमेश को देखते। रमेश कहता–बेटा! ये तुम्हारा घर है, तुम्हें पानी चाहिए, खाना चाहिए, जो भी चाहिए, तुम जाकर अपने हाथ से ले लो या पूरे हक से माँगो अपनी माँ से, बहन से, यूँ मेहमानों की तरह इस घर से अंजान बनकर क्यों रह रहे हो! तभी प्रिया पानी का गिलास हाथ में लिये आती और रीतेश को देते हुए कहती आप पानी पीकर अंदर जाइए, हम जो रिया दीदी के लिए सामान लाए हैं, वो उन्हें दे देते हैं। रीतेश गिलास हाथ में लिये हुए ही रिया के पीछे घर के अंदर चला जाता है।

आज दोपहर में रिया की हल्दी और शाम को मँहदी है, दूर–दूर के सारे रिश्तेदार आ रहे हैं। रमेश सभी मेहमानों के स्वागत की तैयारी में लगा है।

रमेश भाग–भाग कर कभी बाजार जाता, तो कभी घर के अंदर जाकर देखता, कहीं कुछ कमी तो नहीं रह गयी। रीतेश आँगन के बाहर एक कोने में अपने फोन पर अपने काम के सिलसिले में बतियाते बैठे रहता, न ही वह आगे बढ़कर अपने पिता के किसी काम में हाथ बँटाता और न ही एक बड़े भाई की तरह अपनी बहन की शादी की कोई तैयारी खुद करता। वह बस एक ऐसे मेहमान की तरह बैठे रहता, जो यह सोचते हैं कि शादी में शामिल होकर बहुत बड़ा एहसान कर दिये हों। शाम को रिया को मँहदी लगती है, रिया की मँहदी पर सब खूब नाचते हैं। रिया के बहुत कहने पर प्रिया भी फिल्मी गानों में नाचती है। रीतेश बाहर कुर्सी पर अकेले बैठा है। राधिका, रीतेश के पास जाकर कहती है–तुझे पता है रीतेश! ये जो मंडप सजा है, ये नाच–गाना, ये सब तेरी बहन की शादी में हो रहा है, उस बहन की शादी, जिसे बचपन में जब हम कहा करते थे कि ये शादी करके दूसरे घर चली जाएगी, तो तू कहा करता था कि मैं अपनी रिया को किसी को नहीं ले जाने दूँगा और आज तेरी उस बहन की शादी में तू ही मेहमान बनकर आया है। तेरे पापा कबसे तेरे आने का इंतजार कर रहे थे कि कब मेरा बेटा आएगा, मेरा सहारा बनेगा। जबसे रिया की शादी लगी, तेरे पापा बस यही कहते थे–मेरे बैटे को आने दो, दोनों बाप–बेटा मिलकर शादी की ऐसी तैयारी करेंगे कि सब देखते रह जाएँगे, मेरा बेटा आकर सब सँभाल लेगा। और तुम देखो, वो रहे तुम्हारे पापा अकेले यहाँ–वहाँ भागा–दौड़ी कर रहे इस उम्र में। हर एक मेहमान का ख्याल रख रहे। तुम्हें अपने पापा का हाथ बँटाना चाहिए, तुम्हें ध्यान देना चाहिए कि कहीं किसी मेहमान को कुछ चाहिए तो नहीं। पर तुम तो खुद मेहमान बन गये हो। रीतेश गुस्से से कहा–माँ! तुम्हें पता है, तुम क्या कह रही हो। मैं यहाँ आया हूँ, तो मेरा कितना नुकसान हो रहा, तुम्हें क्या पता! एक तो यहाँ इतने मेहमान हैं, एक–एक कमरे में पाँच–पाँच–छः–छहः लोग सो रहे, यहाँ भीड़ में खाना खाना पड़ रहा, मैं कैसे एडजेस्ट कर रहा हूँ, तुम्हें क्या पता! राधिका कहती–बेटा! ये जितने मेहमान आए हुए हैं न, सभी यही कह रहे हैं कि इंतजाम बहुत अच्छा किया है, किसी ने अबतक कोई शिकायत नहीं की। तुम पहले वो शख्स हो, जिसने हमारे इंतजाम में ऊँगुली उठाई, अब तुम खुद सोचो, मेहमान कौन है! तुम्हारी पत्नी जबसे आई है, वो घर में बहू की जिम्मेदारी बखूबी निभा रही है, हर काम में हाथ बँटा रही है। हर चीज का ख्याल रख रही है। काम तो वो भी करती है बेटा! पर उसे बाहर और घर में अंतर पता है। रीतेश पर अपनी माँ की बातों का कोई असर नहीं होता, राधिका वहाँ से चली जाती है।

आज बारात है रिया की। सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं। पर एक पिता का दिल मानता नहीं, रमेश बार–बार हॉल में जाकर देख रहा कि सब ठीक है या नहीं। बारात को जनवासे पर ठहराकर रमेश घर आता है और रीतेश से कहता है–बारात जनवासे पर है, तुम अपने फूफा के साथ वहाँ जाओ और बारातियों को नाश्ता वगैरह करवाओ और देखो, वहाँ उन्हें किसी चीज की कमी न हो। और जनवासे में जाते समय दो बाल्टी और मग ले जाना वहाँ, वैसे तो वहाँ सब रखवा दिया मैंने, पर मुझे बाराती कुछ ज्यादा दिखे, उन्हें कहीं कुछ कमी न हो जाए। रीतेश कहता–मैं ये बाल्टी–मग लेकर नहीं जाऊँगा, किसी और को भेज दो फूफा के साथ। मेरी कोई इज्जत नहीं है क्या, मैं वहाँ जाकर सबको नाश्ता कराऊँ और ये बाल्टी–मग लेकर जाऊँ! रमेश आश्चर्य भरी नजरों से अपने बेटे को देखता, उसे यकीं नहीं होता कि उसका बेटा उससे ये कह रहा।

बारात लग गई। सारे मेहमान खाना खा चुके थे। रात 12 बजे दूल्हे–दुल्हन को मंडप में भवर के लिए बैठाया गया। पंडित ने लाई परसोई के लिए भाई को बुलाने जब कहा, सबकी नजर रीतेश को खोज रही थी। राधिका ने कहा प्रिया से जा देख रीतेश कहाँ है, उसे बुला ला। प्रिया रीतेश को बुलाने जाती है। रीतेश एक कमरे में सोता रहता है। प्रिया उसे जगाकर कहती है, बाहर शादी चल रही है, सभी आपको बुला रहे हैं, फेरे के लिए आपका इंतजार कर रहे हैं लाई परसने के लिए। रीतेश कहता–मै वहाँ जाकर क्या करूँगा! मुझे सोने दो, सुबह विदाई के बाद हमें भी जल्दी निकलना है घर के लिए, तुम भी सो जाओ। प्रिया कहती है–कैसी बात कर रहे हो जी! बाहर बहन की शादी चल रही है और आपको नींद की पड़ी है। फेरे के वक्त लड़की–लड़के के हाथों में भाई को लाई देनी पड़ती है, आपको पता नहीं क्या, चलिए उठिए जल्दी, सब आपका इंतजार कर रहे हैं। रीतेश कहता–अरे! इतने सारे भाई तो हैं, बुआजी के बेटे विकास को बोल दो लाई परोसने। प्रिया कहती–कैसे भाई हो आप! बाहर आपकी बहन की शादी हो रही है और यहाँ आपको नींद की पड़ी है। प्रिया रीतेश को जबरदस्ती उठाकर मंडप में लेकर जाती है। रीतेश की सारी बातें रमेश बाहर खड़े होकर सुन लेता है।

रिया की विदाई हो गयी। रिया बहुत रोयी अपने माँ–पापा के गले लगकर। रिया की आँखों में दर्द दीख रहा था कि उसे पता है कि अब उसके माँ–पापा अकेले हो जाएँगे; क्योंकि वह समझ गयी थी कि उसके भाई ने एक अलग दुनिया बना ली है। रिया की विदाई के तुरंत बाद रीतेश अपनी पैकिंग करके निकलने को तैयार हो गया। प्रिया ने उसे समझाया कि अभी रिया दीदी की विदाई हुई है, अभी कोई मेहमान नहीं गये और हम इस घर के सदस्य होकर पहले निकल जाएँगे, अच्छा नहीं लगता। आप जाकर देखिए कि पंडालवाले का, हलवाई का, लाइटवाले का कितने रुपये और देने बचे हैं। पापाजी अकेले परेशान हो रहे हैं। रीतेश कहता तुम पागल हो क्या, मैं इन सबको पैसे पूछने जाऊँगा, तो सबके पैसे मुझे भरने होंगे। तुम्हें पता है कितने रुपये लग जाएँगे?प्रिया कहती–तो आप इस घर के बेटे हैं, आपका फर्ज है इस घर का खर्च बाँटना और आप जिम्मेदारी से हट रहे हैं। रीतेश गुस्से में प्रिया पर हाथ उठाता, तभी वहाँ कमरे में रमेश और राधिका पहुँच जाते हैं। रीतेश कहता–माँ–पापा! आप दोनों साथ में, यहाँ कुछ काम है क्या?रमेश कहता–नहीं, बेटा! कुछ काम नहीं है। तुमने बहुत किया, आ गये। तुम्हारी माँ कह रही थी कि तुम और बहू आज वापस जा रहे हो, तो हम तुम्हें और बहू को ये कपड़े और मिठाई देने आए थे। प्रिया कहती–इसकी क्या जरूरत थी पापाजी। ये सब आगे आप मेहमानों को दीजिए। कहीं कम न पड़ जाए। रमेश कहता–मेहमानों को ही दे रहा हूँ बेटा! रीतेश तो अब मेहमान बन गया है। रमेश कहता–मैंने सबके बिल दे दिये हैं, कहीं किसी का कुछ बचा नहीं है, इसलिए रीतेश तुम डरो मत कि मुझे तुम्हारे पैसे लगेंगे। मैंने तुम्हें बाहर पढ़ने भेजा था, ताकि तुम पढ़ लिखकर एक अच्छे आदमी बनो, अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो। पर तुम तो अच्छे आदमी की जगह बड़े आदमी बन गये।

बहू ने अपना फर्ज बखूबी निभाया, पर हमारी बदकिस्मती है कि हमारा बेटा अपने ही घर मेहमान बनकर आया। रीतेश को इन बातों का जैसे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह अपना सामान उठाकर घर से बाहर निकल जाता, उसे जाने की इतनी जल्दी थी कि उसे जाने वक्त अपने माँ–पिता के पैर छूकर उनसे आशीर्वाद लेना भी जरूरी नहीं समझा। प्रिया न चाहते हुए भी एक आदर्श पत्नी की तरह अपने सास–ससुर के पैर छूकर उनसे आशीर्वाद लेकर अपने पति के पीछे चल दी।

रमेश–राधिका अब सारे मेहमानों को विदा करके निश्चिंत होकर एक कमरे के दो किनारों पर अकेले और चुपचाप बैठे थे। राधिका की नजरें रमेश से सवाल कर रही थी कि आज रीतेश जो बेटे का फर्ज निभाने की जगह एक मेहमान बनकर आया था, उसके पीछे कौन जिम्मेदार है?हमारे संस्कार या उसकी पढ़ाई?या शहर की हवा ने उसपर अपना जादू चला दिया?रमेश हारे हुए व्यक्ति की तरह सारे सवालों से अंजान बने बैठा रहता। उसकी हालत उस व्यक्ति की तरह हो गयी, जिसके दोनों हाथ किसी ने काट दिये और उसे रोने का भी हक नहीं दिया गया।

कहानी

नाईन्टी नाइन नॉट आउट

डॉ. नलिनी श्रीवास्तव
भिलाई (दुर्ग)
मो.–9752606036

अनिकेत और जागृति गले में सुन्दर लाल गुलाब व रजनीगंधा के फूलों से सजा हुआ जयमाला डाले हुए घर में प्रवेश करते हैं। उन दोनों पर पहली नजर शिवकुमार तिवारीजी की पड़ी।

क्या बात है बेटा?मालूम पड़ता है, कोई जंग जीतकर आ रहा है। पापा यह जंग तो है ही, मैं और जागृति ने कोर्ट में जाकर विवाह कर लिया है। अब आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ। आज इम्पीरियल राज में जागृति के पापा ने एक ग्रेण्ड पार्टी का आयोजन किया है। आप दोनों भी अनुश्री के साथ वहाँ अवश्य आइएगा।

अच्छा! हमें बुलाने हमारा बेटा आया है, क्या बात है?सरला! जरा कीचन से बाहर आओ, सुनो जरा तुम्हारा बेटा क्या कह रहा है?

आती हूँ, जल्दबाजी क्यों कर रहे हो?आज तो रविवार है।

देखो, तुम्हारे बेटे का करतूत!

सरला कहती है–एक दो बार अनिकेत के साथ घर में यह लड़की आ चुकी है। मतलब तुम्हें भी इसकी कारस्तानी का पता था।

क्या बात करते हो?क्या किया है मेरा लड़का अनिकेत ने।

शादी करके घर में आया है, तुम्हारा आशीर्वाद लेने।

कैसे पागल जैसे बात करते हो?शादी–ब्याह क्या कोई हँसी खेल है?क्या गुड्डे–गुड़िया का ब्याह समझ लिया है। शादी–ब्याह में माता–पिता का भी कुछ अरमान होता है। गृहस्थी की पथरीली राह में चलने के लिए लोहे जैसी पैर और आत्मशक्ति की जरूरत होती है।

यह सब सुन अनिकेत नाराजगी दिखाते हुए कहता है। माँ–पापा आपलोग किस जमाने की बात कर रहे हैं। अब जमाना बहुत बदल गया है। लोग–अब तो इंटरनेट से शादी व्याह भी कर लेते है। मैं तो कम से कम मंदिर में जाकर पूजा कर भगवान को साक्षी मानकर जागृति को अपनी पत्नी स्वीकार किया हूँ। आप दोनों का आशीर्वाद लेने आया हूँ। शाम को पार्टी है, उसमें आप दोनों को भी अवश्य आना है।

शिवकुमार नाराजगी दिखाते हुए कहता है। सुन रही हो ना, हमारे बेटे ने गलती नहीं किया है। हम दोनों लकीर के फकीर बने हुए हैं। हमारे स्नेह–दुलार भावना का कितना सुन्दर उपहार दे रहा है। यही संस्कार हमने इसको दिया है!

अनिकेत भी क्रोध में आकर कहता है–सच है। आपलोग कूपमंडूक हो। दुनिया मेरे कम्प्यूटर ज्ञान की तारीफ करते थकते नहीं है। अभी मेरे लिए जागृति के पापा कम्प्यूटर सेन्टर खोलने वाले हैं और पाँच कम्प्यूटर भी दे देंगे। आपलोग सुनते रहना मैं किस प्रकार गूगल की दुनिया में छाऊँगा, आप जिधर देखोगे, आपको अनिकेत का ही नाम दिखाई देगा। पापा आप समय के साथ चलिए। आज के जमाने में रुपया बोलता है। आपने तो मेरे लिए सेकेण्ड हैंड कम्प्यूटर खरीदवाये थे। ठीक है, आपकी जो इच्छा करो, कहकर अनिकेत और जागृति चले गए।

शिवकुमार तिवारी और सरला उन्हें जाते हुए देखते रह गये। दोनों कुछ भी नहीं बोल सके! दोनों सोफा पर बैठे रह गये। तभी कीचन से जलने की दुर्गन्ध आयी। सरला बड़बड़ाते हुए किचन की ओर दौड़ी। आज कितना सुन्दर भरवाँ परवल बना रही थी। मेरा बेटा कितना खुश होकर भरवा परवल खाता था।

शिवकुमार तिवारी बी.एस.पी. स्कूल में कैमेस्ट्री के लेक्चरर हैं। कभी कोई छात्र अपने विषय से संबंधित समस्या लेकर आता, तो तिवारीजी बड़े उत्साह से उसे समझाते। इतना ही नहीं, वह छात्र संतुष्ट होकर ही जाता। इससे तिवारीजी को अत्यधिक खुशी होती। उनकी एक लड़की अनुश्री है। वह पढ़ाई में साधारण, लेकिन फैशन की दुनिया का उसे विशेष ज्ञान था। भाई अनिकेत की वह लाडली थी। दिनभर अपनी सहेलियों से मोबाईल में बात करते रहती। सरला उसके मोबाईल से बात करते देखती तो बहुत नाराज होती। पर घर के सभी सदस्य अनुश्री का ही पक्ष लेते। नये जमाने की है अनुश्री, तुम क्या जानो मोबाईल में बात करने का मजा ही कुछ और होता है।

तिवारीजी चाहते तो ट्यूशन पर बहुत रुपये कमा लेते पर वे रुपये को महत्त्व न देकर अपने बच्चे को दिन–रात एक अच्छे इन्सान के संस्कार से ईमानदारी एवं परोपकारिता की शिक्षा देते रहे।

स्कूल में परीक्षा के दिनों में सबसे अधिक पेपर तिवारी जी ही जाँचते। स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रम, नाटक, खेल एवं राष्ट्रीय सेवा योजना के सभी कार्य में समर्पित भाव से काम करते रहते। तिवारी जी अक्सर कहते ज्यादा रुपये कमाने से घर की शांति नष्ट हो जाती है। घर में शांति है, यह बहुत बड़ी संपत्ति है। पूर्वजों द्वारा बनाया गया मकान में माता–पिता की यादें समायी हुई है। इसीलिए उसे तोड़ना नहीं चाहते थे। थोड़ी बहुत रिपेयरिंग कराकर उसे अच्छा रहने के लायक बना लिय थे। तिवारीजी हमेशा कबीर की इसी पंक्ति को कहकर संतुष्ट हो जाते थे।

''सांई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाए।।''

लेकिन आज... समय की गति कितनी विचित्र होती है। जो कभी सोचा नहीं था। वह आज घटित हो गया। उन्हें याद आने लगा–अनिकेत कभी–कभी झल्लाकर कहता था। पापा! आपके पास कुछ जमा पूँजी भी नहीं है, ताकि मैं कम्प्यूटर लेकर अच्छा खासा कम्प्यूटर सेंटर खोल सकता था और दो–चार कम्प्यूटर भी खरीद लेता, पर आप तो सदैव फक्कड़ ही रहे। ईमानदारी की दुनिया में चक्कर लगाते हुए बड़ा आदमी बनना तो दूर, आप अपने बच्चों की जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाये।

तिवारी जी विषम से विषम परिस्थिति में भी कभी नहीं घबराये। सरला भी उनकी ऐसी आज्ञाकारिणी थी, दिन–रात अपने आपको घर गृहस्थी के कामों में ही व्यस्त रहती। यदि उसे कोई चिंता सताती, तो अपने बच्चों के बारे में, यदि किसी दिन अनिकेत ने खाना नहीं खाया, तो बार–बार पूछती। क्यों नहीं खा रहा है?क्या बना दूँ?बता तो जरा, जो कहेगा, वही बना देती हूँ; जब बच्चे ठीक से खाना खा लेते, तभी उसे संतुष्टि होती।

तिवारी जी मन ही मन बड़बड़ाने लगे, मुझसे ऐसी कौन सी गलती हुई, जिसके कारण आज अनिकेत हमें छोड़कर चला गया। तिवारीजी अपने औलाद की मार को सह नहीं पा रहे थे। पूरी तरह से किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। सरला भी दिनभर खुश रहनेवाली एकदम शांत हो गयी थी। पर समय तो किसी के लिए नहीं रुकता है, वह तो अपनी गति से निरंतर चलते ही रहता है। तिवारीजी ने अपनी बिटिया अनुश्री का मध्यम वर्गीय परिवार का एक होनहार लड़के सुनील से तय करके बहुत ही सादगी के साथ विवाह कर दिया। तिवारी जी ने सोचा–मैंने अपने कर्तव्य की इतिश्री कर दिया है। अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए; क्योंकि आज के परिवेश में किसी धनी लड़के से विवाह करते, तो दहेज की माँग पहले होती। बाद में लड़की को पसंद करते। इसीलिए बहुत सोच–समझकर तिवारी जी ने अनुश्री का विवाह कर दिया।

अनुश्री अपने ससुराल में संतुष्ट रहने का प्रयास करने लगी। पापा और मम्मी की हालात अनिकेत भैया के कारण जो हो गया था, उसे देखकर अनुश्री सहम गयी थी। पापा–मम्मी की खुशी के लिए स्वयं को भी खुश रखने की कोशिश करने

लगी।

लगभग दस वर्ष कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला। अचानक एक दिन तिवारी जी देखते हैं–अनिकेत आकर खड़ा हो गया है। तिवारी जी को देखते ही अनिकेत पापा के पैरों तले गिर पड़ा। पापा मुझे माफ कर दो।

अरे बेटा! क्या हो गया? तुम तो बहुत खुश थे। काफी अमीर हो गये होगे। नहीं पापा! मैं कंगाल हो गया हूँ और आपकी शरण में आया हूँ। तबतक सरला भी धीरे–धीरे चलते हुए ड्राईंग रूम में आ जाती है। अरे बेटा! तू ठीक तो है। तुझे देखने की बड़ी इच्छा हो रही थी। प्रतिदिन भगवान से तू खुश रहे, यही प्रार्थना करती थी और तेरी तस्वीर देखकर खुश हो जाती थी।

अनिकेत अपनी माँ की चरणों में लिपटकर रोने लगा। अरे बेटा! रो क्यों रहा है? क्या बताऊँ माँ! विवाह के कुछ महीने पश्चात् जागृति के पापा का हार्टअटैक से मृत्यु हो गयी। जागृति ने अनिकेत से कहा, फैक्ट्री का सारा काम आप ही सँहालिये। कुछ दिनों तक अनिकेत कामकाज देखता रहा, पर बात–बात में हर जगह उसे नम्बर दो की बात ही दिखाई देती। जालसाजी एवं ड्रग्स, गाँजा, अफीम की तस्करी की कमाई में ही उनका फैक्ट्री खड़ा हुआ था। अनिकेत दिन–रात बेचैन रहने लगा। गलत धंधे से किया गया काम, उसे रास नहीं आ रहा था। इससे फैक्ट्री के मैनेजर एवं वर्कर अनिकेत से चिढ़ने लगे और जालसाजी, तस्करी के मामले में फँसा दिया और उसे जेल की सजा हो गयी। अनिकेत को अपने आपसे घृणा होने लगी। वह सोचने लगा, कहाँ गया मेरा कम्प्यूटर सेन्टर और कम्प्यूटर का ज्ञान–सब कुछ नष्ट हो गया। जेल में बैठे–बैठे अनिकेत यही सोचते रहा–क्या से क्या हो गया? क्या बनने चला था और क्या बन गया? कई बार अनिकेत ने आत्महत्या करने की कोशिश भी किया, पर उसमें भी असफल ही रहा। जीने की इच्छा अब नहीं रहीं। आपका ही विद्यार्थी आलोक कोर्ट में जज की कुर्सी पर बैठा था। उसने मेरी सच्ची रामकहानी सुनी और उसी जज की मदद से अनिकेत को दो वर्ष पहले रिहाई का ऑर्डर हो गया। अनिकेत रोते–रोते कहने लगा। मुझसे जेल में कोई मिलने नहीं आया। आज मेरी रिहाई हुई, तो जेल के बाहर भी कोई नहीं दिखाई दिया। मैं सोचने लगा–कहाँ जाऊँ? हतप्रभ होकर मैं जेल के बाहर ही चबूतरे पर कई घण्टे तक बैठा रहा। तभी अतीत की बातें अचानक मेरे मानस पटल में आशा की किरण जैसे दिखाई दी। जब भी मुझसे कुछ गलती हो जाती थी, तब माँ ही मुझे आँचल में छिपाकर मेरा पक्ष लेती थी और आपके डाँट खाने से मुझे बचा लेती थी। यही आशा आपके दरवाजे तक ले आया। पापा मुझे माफ कर दो। तिवारीजी और उसकी माँ ने अपने बेटे को गले से लगा लिया।

माँ पूछती है–बेटा! क्या बहू भी तुझे छोड़ दी है? हाँ, माँ! मैं फैक्ट्री के काम को ठीक से नहीं सँभाल सका, तो उसने फैक्ट्री के मैनेजर से विवाह कर लिया और मुझे तलाक दे दिया। मुझे जेल भिजवाने का काम भी उसी ने किया। यह कहकर अनिकेत माँ से लिपटकर रोने लगा।

तिवारी जी अपने बेटे के पीठ पर हाथ फेरते हुए कहने लगे। बेटा! हम तो बूढ़े हैं, तुम्हें क्या सहारा देंगे? बुढ़ापे में तो बच्चे ही माँ–बाप की लाठी होते हैं, पर इतना याद रखो, सच्चाई की कीमत को आजतक कोई नहीं लगा सका है। उससे जीवन में जो शांति मिलती है, वह बहुत बड़ी बात है। तुम आज से यह संकल्प करो फिर से अपनी दुनिया सच्चाई और ईमानदारी के साथ शुरू करोगे।

एक दिन मरना तो सभी को है, यह मृत्युलोक है, पर जबतक जीना है, खुश होकर जीना। यह कहना छोड़ दो कि जीने की इच्छा नहीं रहीं। ऐसा नहीं बोलते बेटा! ईश्वर बहुत दयालु हैं, तुम्हारी आँख खुल गयी, यह बहुत बड़ी बात है। कहाँ तुम रुपये कमाने के लिए निन्यानबे के फेर में पड़े थे कि बहुत जल्दी ही लखपती बन जाऊँगा। यहीं पर तुम गलत थे। पर मेरा विश्वास था–एक न एक दिन तुम्हें सच्चाई का अहसास जरूर होगा। मेरी बात को हमेशा याद रखना। तुम्हें शुरुआत में बहुत कष्ट होगा, बहुत परेशानी होगी, लेकिन तुम अपना धैर्य मत खोना। अपना आत्मबल बनाए रखना। धीरे–धीरे सब कुछ अच्छा ही होगा। सब कुछ अच्छा ही होगा। यह कहकर तिवारी जी स्वयं अपने आँसू पोंछने लगे।

नवगीत

कविता — जगदीश पंकज

अंधकार के न्यायालय में

किरणों पर अभियोग चल रहा
बदचलनी के लिए गवाही
देने आती हैं उल्काएँ

संध्या ने आरोप लगाया
तारे उसको घूर रहे हैं
तारों का कहना है वे तो
सदा गगन में दूर रहे हैं

पारदर्शिता की मंडी में
कितना दुराचार बिकता है
पूछ रहीं किरणें लज्जा को
लेकर कहो, कहाँ छिप जाएँ

कितनी व्यथित याचिकाओं के
निर्णय न्यायाधीन पड़े हैं
और जुगनुओं के प्रकाश पर
भी अनगिन प्रतिबंध जड़े हैं

अधिवक्ताओं के तर्कों से
सारा दृश्य बदल जाता है
फरियादी को ही अपराधी
कह–कहकर उपहास उड़ायें

जहाँ अँधेरे के परिसर में
किरणों का आना निषिद्ध हो
सारे साक्ष्य मिटा डाले जब
सच कैसे निर्दोष सिद्ध हो

कुछ वैकल्पिक समाधान भी
दूर खड़े हो झिझक रहे हैं
किस तटस्थता की ऐनक से
न्याय–दंड किस ओर झुकायें

कल हवा ने

कान में आकर कहा कुछ
मैं न सुन पाया
गयी वह फुर्र कहकर

हो रही चर्चा
सड़क चौपाल गलियों
नुक्कड़ों पर
लोग मुड़कर देखते
मुझको बड़े ही
चकित होकर

क्या हुआ
चंचल समय को
धूसरित होने लगे
विश्वास के जो दुर्ग ढहकर
दे गयी
अफवाह सी पूरे शहर को
चुप निकलकर
जादुई सच के
किसी अहसास सी
फैली मचलकर

मुखबरी

करने लगे हर
आँख के संकेत जिनसे
फूटता सन्देह बहकर

कुछ स्वयं की
कुछ समय की चेतना
पथरा गयी है

तंत्र के षडयंत्र की
दुर्गन्ध मन पर
छा गयी है

एक विस्मय
फैलकर पूरे पटल, पर
है खड़ा गुमसुम
निरुत्तर दंश सहकर

कहानी

भँवरजाल

सुजाता कुमारी
भागलपुर (बिहार)
7992251881

जून का महीना था। उमस से भरी रात, बिजली को भी आज...'ओफ! क्या हो गया'। अचानक पार्वती के मुँह से आवाज निकल पड़ी।

दिवाल पर टँगी घड़ी पर नजरें डालीं, तो रात्रि ने दो प्रहर काट ली थी। तीसरा प्रहर चल रहा था। आज पार्वती को नींद नहीं आ रही थी। रातभर रह–रहकर आँखें खुल जाया करती थीं। सुबह मँझले बेटे के साथ झुमरीतिलैया जाना था, वह भी तो तैयार थी, जाने के लिये। सुनसान निःशब्द रात्रि का तीसरा पहर, सभी गहरी नींद में सो रहे थे।

पार्वती के कानों घड़ी के टिक्...टिक्...टिक् की आवाज आ रही थी। अचानक घर का कुत्ता भौंक उठा–'संभवतः कोई बिल्ली रही होगी' पार्वती ने सोचा और उठते हुए जम्हाई ली और दाहिना हाथ उठाकर चुटकी बजायी, मानो झाड़–फूँक करनेवाला कोई तांत्रिक भूत भगा रहा हो।

घड़ी के टिक्...टिक्...टिक् पर वह सोचने लगी–'घड़ी भी कितनी अद्‌भुत चीज है, चलती भी है और बोलती भी है।' तभी वह वर्तमान पीढ़ी के विषय में सोचने लगी,''नयी पीढ़ी भी तो घड़ी के समान ही है, चलती भी है और बोलती भी है।'' सभी घरों की घड़ियाँ अपने अलग–अलग अंदाज में बोलकर चलती हूँ। एक मैं हूँ, जो कभी बोलती नहीं, पर लगातार चलती रहती हूँ। हे ईश्वर! बोलकर उठते हुए बुदबुदाती है–'यही तो मेरे जीवन की खूबी है, जो नहीं बोलकर भी चलती रहती है। फिर वह बाहर आकर बरामदे में पड़ी खाट पर लेट गयी और अपने अतीत में खो गयी।

सोमनाथ से जब उसका विवाह हुआ था, उसकी उम्र मात्र सोलह–सतरह की रही होगी। सोमनाथ भी बीस–बाईस के रहे होंगे। इधर सास के मरे हुए मात्र चार महीने हुए थे, दोस्तों के दबाव में आकर सोमनाथ के पिता को दूसरा विवाह करना पड़ा। सोमनाथ यह सोचकर खुश था कि चलो इससे पिताजी को खुशी मिलेगी।

पार्वती ने भी हमउम्र सास को इतना ही आदर और सम्मान दिया, जितना दो पीढ़ी के अन्तरवाली सास–बहुओं में नहीं होता, सास–बहु का एक सहेली जैसे रहना। सोमनाथ के पिता ने भी बेटे–बहू से मित्रवत् व्यवहार किया।

सोमनाथ अपने पिता के व्यवसाय को भलीभाँति सँभाल रहा था, वहीं पार्वती अपने तथा सौतेली सास के बच्चों को एक समान पालन–पोषण में तनिक भी कमी नहीं रखती थी। वह सभी बच्चों को स्नान कराते समय अखाड़े पर उतरे योद्धा के समान तेल मालिश करना, कूएँ से पानी खींच–खींच कर स्नान कराना, पंक्तियों में बिठाकर सबको एक साथ भोजन कराना, यही उसकी दिनचर्या थी।

व्यापार दिन–प्रतिदिन तरक्की पर था। सभी बच्चे साथ– साथ बड़े हो रहे थे। भरा–पूरा परिवार था। पार्वती के चार सौतेले देवर और चार खुद के बेटे, पाँच सौतेली ननद और और तीन बेटियाँ। धीरे–धीरे सास ने पार्वती पर अपने पद का प्रभाव दिखाने लगी। पार्वती यथा नाम तथा गुण, त्याग और सेवा की प्रतिमूर्ति, अपने कर्त्तव्य पर डटी रही। समय बीतता गया। बीतना उसकी नियति है।

कुछ दिनों बाद सोमनाथ के पिता ने उसका व्यवसाय अलग करवा दिया। जमा–जमाया व्यवसाय अब पार्वती के सास के हिस्से में आ गया। पार्वती के पुत्र क्रमशः रामनाथ, श्यामदेव, जयदेव और विजय–सभी को अपने पैरों पर खड़ा करना था। पार्वती अपने मायके से कुछ पूँजी उधार लायी और सोमनाथ को सौंपते हुए बड़े प्यार से देखा! जबकि सोमनाथ की नजरें झुक गयी। पार्वतीने समझाया–'इसमें शर्म की क्या बात?

इसपर सोमनाथ ने कहा–'नहीं–नहीं पार्वती! यह मुझसे नहीं होगा।', मैं परदेश कमाने चला जाऊँगा, पर यह पैसा।" नहीं–नहीं यह मुझसे नहीं होगा'।

पार्वती ने कहा–'भाई! लोगों ने मुझे मेरा हिस्सा समझकर दिया, पर मैं इसे वापस कर दूँगी, पहले मेरा व्यवसाय खड़ा तो हो जाय,' कहते हुए पार्वती ने रामनाथ के हाथ में पैसे की थैली रख दी।

रामनाथ–पार्वती की चतुराई देखकर गद्‌गद हो गया। उसने पैसे की थैली बगल में रखकर अपने दोनों हाथों से पार्वती का चेहरा उठाया और चूमते हुए कहा–'मैं तुम्हें कभी सुख नहीं दे सका। पार्वती! तुम कहाँ, कौरव के घर में आ गयी!

पार्वती अपने हाथों से सोमनाथ का मुँह बन्द कर दिया और आँखें डबडबाकर बोली–'नहीं–नहीं, आपके मुँह से ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं, आप भी तो मेरे लिये जीवनभर खटते रहे।' कहने भर की देरी थी कि साठ पार कर गये उम्र में दोनों तरफ मानो एक ज्वार–भाटा आ गया। कुछ देर बाद दोनों एक–दूसरे से अलग हुए। पार्वती के गाल शर्म से लाल हो गये थे। वह कपड़े ठीक करती हुई अंदर चली गयी। पार्वती को लजाते देखकर सोमनाथ की आँखें खिल गयीं, मानो किसी युद्ध पर विजय प्राप्त कर लिया हो।

पार्वती का बड़ा पुत्र एक प्रतिभा सम्पन्न, खेल में रुचि लेनेवाला था। अच्छी डिग्री प्राप्त कर चुका था। उसने नौकरी नहीं की और पिताजी के व्यवसाय में हाथ बँटाने लगा। वह चाहता तो अच्छी नौकरी प्राप्त कर मौज–मस्ती से दिन काटता, पर व्यवसाय की देखभाल कर भाइयों को अफसर बनाने को दृढ़ संकल्पित था। उसकी मेहनत रंग लायी। आज श्यामदेव झुमरीतिलैया के किसी कॉलेज में प्रोफेसर, जयदेव इन्सपेक्टर, विजय अपने बड़े भाई के काम में हाथ बँटाता था।

पार्वती अपने चारों बेटे को देखकर फूली नहीं समाती थी। सबसे ज्यादा रामनाथ को; क्योंकि वही तो है, जो पारिवारिक नैया की पतवार थामे हुए है। आज श्यामदेव घर आया है। रामनाथ अपने सभी भाइयों को अतिथि के समान आदर–सत्कार कर रहा है। वह अपने पिता का सम्पूर्ण संस्कार लिये हुए है।

आजकल कारोबार में मंदी छाई हुई है, फिर भी भाई और बच्चों को आगे बढ़ाने के लिये संकल्पित है। जब चारों पुत्र इकट्ठे होते हैं, तो पार्वती अपना सब दुख भूल जाती है। सोमनाथ को साँस की बीमारी हो गई है। पार्वती दिन–रात उसकी सेवा में लगी रहती है। गरम सरसों के तेल से मालिश करते–करते पार्वती के हाथ तेल से चमचमाते रहते हैं। सोमनाथ की खाँसी से वह बहुत परेशान हो जाती है, फिर भी उसकी सेवा करते पार्वती थकती नहीं।

वर्त्तमान को बेहद जीनेवाला श्याम, आज अपने वर्त्तमानमें भी नहीं था। वह अतीत में भी नहीं था। वह कहाँ था, इसका उसे खुद पता नहीं था। हर पल भाई का गुणगान करनेवाला श्याम आज अचानक धमक–धमककर बोल रहा था।

'अरे!'' आपलोग क्या जीते हैं? इस तरह तो कोई गँवार ही जी सकता है।'' मैं अपनी माँ को और इस भँवरजाल में नहीं रहने दूँगा, अपने साथ ले जाऊँगा।

'क्या?'''मुझसे भी पूछा कि मैं कहाँ रहना चाहती हूँ?'' साहस और आत्मविश्वास के साथ पार्वती ने कहा।

सन्न रह गया श्याम।
'माँ–माँ! मैं ये क्या सुन रहा हूँ?
श्याम ने लगभग हकलाते हुए कहा–''क्या तुम मेरे साथ सुख–सुविधा में नहीं रहना चाहती?''
''राम भैया के पास दुख के सिवाय और क्या है माँ?''
''ये तुम क्या समझोगे?''माँ का स्वर कठोर पर संयमित था।
श्याम ने शक्ति जुटाकर गिड़गिड़ाते हुए कहा–'तुम इस भँवरजाल से निकलो माँ!'
जय श्याम की चाटुकारिता समझ रहा था। पिताजी कल ही कह रहे थे कि जो हमदोनों को रखेगा, अपना कारोबार और जमा सम्पत्ति उसी को देंगे। तभी तो आज श्याम सभी सुख–सुविधा की झलक दिखा रहा था। जय झट से बोल पड़ा– 'नहीं माँ! भँवरजाल से निकलो, पर श्याम भैया के साथ नहीं। मेरे पास माँ! मेरे पास।'
पार्वती पत्थर की मूर्ति की भाँति टस से मस नहीं हुई,।
जय श्याम की तरफ मुख कर उत्तेजित होकर बोला–
"उँह.!' भँवरजाल' से...क्या भाभी से पूछा?

विजय जो सबसे छोटा था, बचपन से लेकर आजतक माँ पर अपना एकाधिकार समझता था। पत्नी के होते हुए भी वह माँ–पिताजी की सेवा में लगा रहता था। माँ को घर में न देख छोटे बच्चे की भाँति परेशाान हो जाता था, सभी कमरे में घुसकर माँ को खोजता। नहीं मिलने पर भाभी तथा पत्नी से पूछता, तभी दम लेता था। आज माँ रूपी पूँजी को लुटते देख अपने अधिकार क्षेत्र में कूद पड़ा। उसने दोनों भाइयों से कुछ कहा तो नहीं, पर कभी न उठने वाली आँखें आज भयंकर हो रही थी। क्रोध से चेहरा तमतमा गया था, मानो ग्रीष्मकाल का सूर्य अपनी पूर्ण अवस्था में हो।

रामनाथ जो पीछे से आकर जाने कबसे खड़ा था, अचानक बोल पड़ा– 'श्याम और जय ठीक कह रहा है माँ!' सभी ने मुड़कर रामनाथ को देखा।'यहाँ तुम भँवरजाल में हो माँ! इन दोनों के पास सरकारी नौकरी है, मेरे पास तो एक बिजनेस और उसमें दो भाई का बड़ा परिवार।' रामनाथ ने संयमित और धीमे स्वर में कहा–'माँ तुमको मैंने आजीवन कष्ट उठाते देखा है। तुम मायावी भँवर से निकल जाओ माँ! छोड़ दो हमें हमारी हालत पर, यह तुम्हारे लिये भँवरजाल है।' कहते–कहते उसकी सीप जैसी आँखों से मोती जैसे मोटे–मोटे आँसू टपक पड़े।

अंततः तय हुआ कि कागज की चार छोटी–छोटी पर्चियों में सभी के नाम लिखकर किसी बच्चे से उठवाया जाय। पार्वती ने कहा–'जिसका नाम निकलेगा, मैं उसी के साथ रहूँगी।' कहते–कहते उसकी साँसें मानो अटक–सी गई। लम्बी साँस लेते हुए उसने अपनी ममता भरी दृष्टि सबों पर डाली।
विजय ने उत्तेजित होकर कहा–'नहीं माँ! चार नहीं तीन पर्ची लिखवाओ। श्याम और जय की आँखें आश्चर्य से फट गई।
'क्या?' दोनों एक साथ बोल पड़े।

विजय ने कहा– 'हाँ, श्याम भैया! जय भैया, ठीक ही तो कह रहा हूँ। मैं तो राम भैया के साथ हूँ और रहूँगा; क्योंकि हम दोनों व्यवसायी हैं। आप दोनों ठहरे नौकरीवाले, आपके पास अनन्त सुविधाएँ हैं। मेरे लिये तो राम भैया ही हमारी पूंजी और ताकत हैं, जिसे इन्होंने अपना पसीना बहाकर खड़ा किया है।'

आखिर एक बच्चे से पर्ची निकलवायी गयी। पार्वती श्याम के पास रहेगी। पार्वती भी अपने नियति को समझ रही थी। अपने भँवरजाल को देख रही थी। रोने की इच्छा हो रही थी। आखिर रोया भी कहाँ तक जाय। जबतक जीना है, होशोहवास से जीना है। पार्वती ने अपने आपको सँभाला। वह अपनी सारी स्मृतियाँ गुम कर और हारकर किसी हारे हुए जुआरी की तरह उठ बैठी।

घड़ी में पाँच बज रहे थे। मस्जिद से अजान की आवाज आ रही थी। आज यह घड़ी सिर्फ चलेगी ही नहीं, बोलेगी भी। भँवरजाल से मैं नहीं निकलूँगी। अरे! यह तो मेरा रक्षा कवच है। हाँ, मेरा अपना भँवरजाल, मैं इस जाल में स्वेच्छा से कैद रहूँगी।
पार्वती संयमित स्वर में बोल पड़ी–'मै कहीं नहीं जाऊँगी, यहीं रहूँगी अपने भँवरजाल में।'

सोमनाथ ने सुना तो खुशी से उसकी आँखें छलक गयीं। रुँधे कंठ से बोल पड़ा–'हाँ, पार्वती! तुम अपनी भँवरजाल को सँभालो, इसे टूटने मत दो।'

डबडबाई आँखों से पति को देखी, सिर हिलाते हुए सहमति जताई।

गजलें

रथेन्द्र विष्णु 'नन्हें'
भागलपुर,
9123138580

हर कत्ल में खूँ निकले जरूरी नहीं यारो
नजरों के तेग का वार क्या वार नहीं होता
सूख के बिख़र जाए जो फूल चमन में यारो
खुखू रहती भरपूर उसमें पर खार नहीं होता
मिल लें बिछड़ जाना दस्तूरें जहाँ है यारो
भूल गये जो रिश्ता फिर दमदार नहीं होता
समेट लो दामन में खुशियों के हर लम्हों को
फिर लौट आए वो लम्हा एतबार नहीं होता
भूखे चूजों के लिए भटक रहे परिंदे सहरा में
मिलें न दाना तो सहरा गुलजार नहीं होता
प्यार के लिबास में अनेकों रंग मिलेगे 'नन्हें'
कफ़स में जो कैद हो वो शिकार नहीं होता

कश्ती मेरी पुरानी है
सफ़र में लेकर चले कश्ती मेरी पुरानी है
लहरों से लड़ती चलेगी इसने मन में ठानी है
पतवार भी है जर्जर पर हौसलों में जवानी है
जितनी लहरें टकरातीं उतनी आती रवानी है
पल–पल हैं बढ़ते जाते दरिया पार करते जाते
सुना गहरायी बहुत है दिखता शांत पानी है
चुनौती भरा सफर है जहाँ भी बेगाना सा
साहिल दूर है अभी राह भी अंजाना सा
शुक्र है हवा का रुख और लहर दरिया का
दोनों की मेहरबानी है बची आज जिंदगानी है
सफ़र में लेकर चला जो कश्ती मेरी पुरानी है।

कहानी

एक उच्चके का रोमांच

सुशांत सुप्रिय
इंदिरापुरम, गाजियाबाद (यू.पी)
8512070086

तत्काल गिरफ्तार न होना महत्वपूर्ण बात थी। जिम एक दरवाजे में छिप गया और उसका पीछा करनेवाले पुलिस लगभग उससे आगे निकल गयी। लेकिन फिर अचानक उसने गली में उनके कदमों के लौटने की आवाज सुनी। वह तेजी से कूदता हुआ भागा।

'रुको, वर्ना हम तुम्हें गोली मार देंगे, जिम्।' हाँ, हाँ मारो गोली। उसने सोचा और अबतक वह उनकी प्रहार सीमा से दूर जा चुका था। उसके कदम उसे पुराने शहर की ढलानवाली गलियों के बीच से तेजी से भगाये लिये जा रहे थे। फ़ब्बारे के ऊपर वह सीढ़ियों की रेलिंग पर से कूदा। फिर उसने ज़हन में जिन सभी लोगों के नाम याद आए, उनके यहाँ इस समय जाना ठीक नहीं था। लोला नहीं, निल्दे नहीं, रेनी नहीं। ये पुलिसवाले उसे ढूँढते हुए जल्दी ही इन सब लोगों के घरों के दरवाजे खटखटाने पहुँच जाएँगे। यह एक मृदुल–सी रात थी और आकाश में ऐसे फीके–से बादल थे, जैसे दिन में नहीं दिखते थे। बादल, जो गली के ऊपर स्थित मेहराब के भी बहुत ऊपर थे।

नये शहर की चौड़ी सड़कों के पास पहुँचने पर मारियो अल्बानेसी उर्फ जिम बोलेरो ने अपनी चालें थोड़ी धीमी की और अपने माथे पर गिर आई बालों की लटों को अपने कानों के पीछे किया। कहीं किसी के कदमों की कोई आवाज नहीं आ रही थी। दृढ़ता और सावधानी से उसने सड़क पार की और आर्मांण्डा के मकान के दरवाजे पर दस्तक दी। रात के इस पहर वह आमतौर पर अकेली होती है। इस समय तो वह सो रही होगी। इस बार उसने जोर से दरवाजा खटखटाया। 'कौन है?' एक पल के बाद झल्लाए हुए एक पुरुष स्वर ने पूछा। 'इस समय रात को सब सोना चाहते हैं।' वह लिलिन था।

एक मिनट दरवाज़ा खोलना, आर्मांडा। मैं हूँ जिम, उसने कहा। आर्मांडा ने बिस्तर पर करवट बदली। अरे, लड़के! एक मिनट, मैं दरवाजा खोलती हूँ। ओह, तुम हो जिम। उसने बिस्तर के पास बँधी रस्सी को पकड़कर खींचा। आज्ञा का पालन करते हुए बाहरी दरवाजा खुल गया। अपने दोनों हाथ जेबों में रखे हुए जिम गलियारे में से चलता हुआ शयन–कक्ष में आ गया। चादरों के बीच आर्मांडा अपने बड़े बिस्तर पर अपनी विशाल काया को फैलाये हुए लेटी थी। बिना बनाव शृंगार के तकिये पर पड़ा उसका चेहरा ढीला और झुर्रियों से भरा हुआ था। बिस्तर के दूसरे कोने में उसका पति लिलिन लेटा हुआ था। ऐसा लग रहा था, जैसे वह अपना छोटा–सा नीला चेहरा तकिये में घुसा लेना चाहता था, ताकि वह अपनी बाधित नींद को पूरा कर सके।

लिलिन को तबतक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जबतक अंतिम ग्राहक निपट नहीं जाता। फिर वह बिस्तर पर लेटकर अपने आलसभरे दिन में एकत्र हो गई थकान को दूर करने के लिए निद्रा की आग़ोश में जा सकता है। क्या करना है और कैसे करना है, इसके बारे में लिलिन कुछ नहीं जानता है। यदि उसके पास पर्याप्त संख्या में सिगरेट हो, तो वह संतुष्ट रहता है। आर्मांडा के लिलिन पर ज्यादा रकम खर्च नहीं करनी पड़ी। लिलिन दिनभर में जितनी सिगरेट पीता है, बस उसने का ही खर्च आर्मांडा वहन करती है। रोज सुबह वह अपना सिगरेट–पैकेट लेकर बाहर निकल जाता है। वह थोड़ी देर के लिए कभी मोची के पास बैठता है, कभी कबाड़ीवाले के पास, तो कभी नलसाज के पास। उन सभी दुकानों के स्टूल पर बैठकर वह एक के बाद एक सिगरेट पीता रहता है। उसके हाथ उसके घुटनों पर होते हैं, उसका चेहरा पीला होता है और उसकी दृष्टि तन्द्रालु होती है। वह किसी जासूस की तरह सबकी बातें सुनता है, पर खुद कभी–कभार ही कोई संक्षिप्त टिप्पणी करता है या अप्रत्याशित कुटिल मुस्कान देता है।

शाम के समय जब अंतिम दुकान भी बंद हो जाती है, वह शराब के ठेके पर जाता है और लगभग एक लीटर दारू से अपना तर करता है। फिर वह वहीं बैठकर तबतक अपनी बाकी बची सारी सिगरेटों को फूँकता है, जबतक कि दारू के ठेके के बंद हो जाने का समय भी नहीं हो जाता। जब वह वहाँ से बाहर आता है, तब भी उसकी बीवी कोर्सो के इलाके में अपने छोटे परिधान,सूजे हुए पैरों और तंग जूतों में अपने नियमित गश्त पर होती है। लेकिन गली के एक कोने के पास प्रकट होता है, एक धीमी सीटी बजाता है और अपनी पत्नी को यह बताने के लिए कुछ शब्द बुदबुदाता है कि अब देर हो गयी है और घर का बिस्तर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन वह अपने पति की ओर नहीं देखती। वह फुटपाथ पर ऐसे खड़ी है, जैसे वह किसी मंच पर खड़ी हो। उसके उरोज तारवाली लचीली अंगिया में दबे हुए हैं। ऐसा लगता है, जैसे उसकी अधेड़ देह किसी छोटी उम्र की लड़की के कपड़ों में घुसी हुई हो। वह अपने पर्स को अपने हाथों में अधीरता से झटक रही हो। वह अपनी सैंडल की एड़ी से फुटपाथ पर दायरे बना रही है। अचानक वह गुनगुनाने लगती है। ऐसी अवस्था में वह अपने को मना करते हुए कहती है कि अभी भी वहाँ काफी चहल–पहल है। इसलिए उसे घर जाकर आर्मांडा के आने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। हर रात वे दोनों इस तरह एक–दूसरे से प्रेम जताते हैं।

'तो कैसे आना हुआ जिम?' आर्मांडा की आँखों में हैरानी का भाव है। जिम को पहले ही छोटी मेज पर पड़ा सिगरेट पैकेट दिख गया है और उसने उसमें से एक सिगरेट लेकर जला ली है।

'मुझे आज की रात यहाँ बितानी है।'

'ठीक है जिम! बिस्तर पर आ जाओ। लिलिन प्यारे, तुम सोफे पर चले जाओ। उठो, जिम को बिस्तर पर आने दो।'

लिलिन पत्थर की तरह वहीं पड़ा रहता है। फिर शिकायत भरी आवाज में अस्पष्ट–सा कुछ बुदबुदाते हुए वह किसी तरह उठता है, बिस्तर से उतरता है, अपना तकिया, कम्बल और मेज पर रखा सिगरेट पैकेट उठाता है।

'बढ़िया, लिलिन प्यारे, चलो, शाबाश!'

वह झुका हुआ और बहुत छोटा लग रहा है। इन सभी चीजों के भार तले दबा हुआ वह गलियारे में रखे सोफे की ओर चला जाता है।

अपने कपड़े उतारते हुए जिम सिगरेट के कश लेता रहता है। वह अपनी पतलून को ध्यान से मोड़कर हैंगर पर टाँग देता है। फिर वह अपनी जैकेट को भी बिस्तर के सिरहाने के पास रखी हुई कुर्सी पर व्यवस्थित रूप से रख देता है। इसके बाद वह एक और सिगरेट पैकेट, माचिस और ऐश–ट्रे दूसरी जगह से उठाकर अपनी पासवाली छोटी मेज पर ले आता है और खुद बिस्तर पर लेट जाता है। आर्मांडा कमरे की बत्ती बुझाकर एक ठंढी साँस लेती है। लिलिन गलियारे में पड़े सोफे पर सो गया है। आर्मांडा करवट बदलती है। जिम अपनी सिगरेट बुझा देता है। तभी दरवाजे पर दस्तक होती है।

जिम का हाथ जैकेट की जेब में रखी रिवाल्वर पर चला जाता है। अपने दूसरे हाथ से उसने आर्मांडा की कोहनी पकड़ी हुई है। वह फुसफुसाकर आर्मांडा से सावधान रहने के लिए कहता है। आर्मांडा की बाँह मोटी और कोमल है और कुछ पल वे दोनों उसी अवस्था में रहते हैं।

'कौन है?पूछो लिलिन!' आर्मांडा धीमी आवाज में कहती है।

गलियारे में सोफ़े पर लेटा लिलिन व्यग्र होकर झुँझलाता है और अशिष्टता से

पूछता है, 'कौन है बे?'
'अरे! आर्मांडा! मैं हूँ एंजलो।'
'एंजलो कौन?'
'पुलिस का सार्जेंट, एंजलो। मैं इधर से गुजर रहा था, तो सोचा, तुमसे मिलता चलूँ। क्या तुम एक मिनट के लिए दरवाजा खोलोगी?

जिस बिस्तर से नीचे उतर जाता है और आर्मांडा से चुप रहने का इशारा करता है। वह गुसलखाने का दरवाजा खोलकर अंदर झाँकता है और फिर जिस कुर्सी पर उसके कपड़े पड़े हैं, वह कुर्सी लेकर गुसलखाने में चला जाता है।

'मुझे किसी ने यहाँ आते हुए नहीं देखा है। जल्दी से उसे यहाँ से भगाओ।' जिम मृदु आवाज में कहता है और गुसलखाने में जाकर दरवाजा भीतर से बंद कर लेता है।

'प्यारे लिलिन, बिस्तर पर आ जाओ। चलो, लिलिन!' बिस्तर पर लेटे आर्मांडा दोबारा कमरे की व्यवस्था सुनिश्चित करने लगती है।

आर्मांडा! तुम मुझे बाहर ही प्रतीक्षा करवा रही हो, दरवाजे के बाहर खड़ा पुलिस सार्जेंट बोलता है।

लिलिन शांत भाव से सोफे पर से उठता है, अपना तकिया, कम्बल, सिगरेट–पैकेट, माचिस और ऐश–ट्रे उठाकर बिस्तर पर आ जाता है। बिस्तर पर लेटकर वह ओढ़नेवाली चादर से अपनी आँखें ढँक लेता है। आर्मांडा रस्सी पकड़कर खींचती है और बाहर का दरवाजा खुल जाता है। सार्जेंट सोड्डू भीतर आता है। वह पुलिस की वर्दी में नहीं है और उसके बूढ़े चेहरे पर अस्त व्यस्तता का भाव है। उसका चेहरा मोटा है और मूँछें सफेद हैं।
'सार्जेण्ट! आप देर रात तक काम पर हैं।' आर्माण्डा कहती है।
'अरे, मैं तो टहलने निकला था' सोड्डू कहता है, और मैंने सोचा कि तुमसे मिलता चलूँ।'
'आप क्या चाहते हैं?'
सोड्डू बिस्तर के सिरहाने के पास रूमाल से अपने माथे का पसीना पोंछ रहा था।
'कुछ नहीं, बस तुमसे मिलने चला आया। और नया क्या चल रहा है?'
'नया कैसा?'
'संयोग से कहीं तुमने अल्बानेसी को देखा है क्या?'
'जिम?अब उसने क्या किया है?'
'कुछ नहीं, बच्चोंवाली हरकतें। हम उससे कुछ पूछताछ करना चाहते थे। क्या तुमने उसे देखा है?
'तीन दिन पहले।'
'मेरा मतलब आज और अभी से है।'
'मैं तो पिछले दो घंटे से सो रही थी सार्जेण्ट! आप मुझसे यह सब क्यों पूछ रहे हैं?उसकी प्रेमिकाओं रोजी, निल्दे, लोला वगैरह के पास जाइए और उनसे पूछिए।'
'कोई फायदा नहीं। जब वह कुछ गड़बड़ करता है और मुसीबत में होता है, तब उन सबसे दूर रहता है।'
'वह यहाँ नहीं आया है। शायद अगली बार सार्जेण्ट।
'खैर, आर्माण्डा! मैं तो वैसे ही पूछ रहा थ। जो भी हो, तुमसे मिलकर अच्छा लगा।'
'शुभरात्रि, सार्जेण्ट।
'शुभरात्रि।'
सोड्डू मुड़ा, लेकिन दरवाजे की ओर नहीं गया।
'मैं सोच रहा था, अब तो लगभग सुबह होनेवाली है और मुझे अब गश्त भी लगानी है। मैं अपने कमरे के बिस्तर पर वापस नहीं लौटना चाहता। अब जब मैं यहाँ आ ही गया हूँ, तो क्यों न आज यहीं रुक जाऊँ। तुम क्या कहती हो आर्माण्डा! अब मेरे लिए थोड़ी जगह बनाओ।'
'ठीक है। लिलिन सोफे पर चला जाएगा। लिलिन प्यारे, उठो, सोफे पर जाओ।'
लिलिन अपने लंबे हाथों से चीजें टटोलने लगा। उसने मेज से सिगरेट पैकेट लिया और भुनभुनाता हुआ किसी तरह उठा। बिस्तर से नीचे उतरकर उसने लगभग बिना अपनी आँखें खोले अपना तकिया, कम्बल, माचिस उठाया। चलो, प्यारे लिलिन! वह हॉल में अपने पीछे कंबल घसीटता हुआ गलियारे में रखे सोफे की ओर चला गया। सोड्डू बिस्तर पर चादर के भीतर घुस गया।

उधर गुसलखाने में छिपा हुआ जिम गुसलखाने की खिड़की से आकाश का गहरे हरे रंग में बदलते हुए देख रहा था। मुश्किल यह थी कि वह अपना सिगरेट पैकेट शयनकक्ष की मेज पर ही छोड़ आया था और अब वह पुलिस सार्जेण्ट उसी कमरे के बिस्तर पर जा लेटा था। इसके कारण जिम को सुबह होने तक बिना सिगरेट के वहीं छिपे रहना पड़ सकता था। कमोडवाले उस छोटे–से गुसलखाने में जहाँ टेलकम पाउडर के बहुत सारे डिब्बे पड़े थे। उसने चुपचाप दोबारा अपने कपड़े पहन लिये थे, कंघी से अपने बाल सँवारे थे और वाश–बेसिन के आईने में अपने हुलिए पर निगाह डाली थी। वहाँ ताक पर इत्र और आँखों की दवाई की शीशियों के साथ कई अन्य दवाइयाँ और कीटनाशक मौजूद थे। खिड़की से आती रोशनी में उसने कई शीशियों पर लिखे दवाइयों के नाम पढ़े, एक शीशी में से कुछ दवाइयाँ चुराकर जब में रख लीं और गुसलखाने में चारों ओर देखना जारी रखा। वहाँ ढूँढने के लिए ज्यादा कुछ नहीं था। कुछ कपड़े टब में पड़े थे, कुछ खूँटी पर लटके हुए थे। उसने वास–बेसिन के नल की जाँच की, आवाज के साथ पानी बाहर आया। यदि सोड्डू ने सुन लिया तो?भाड़ में जाएँ सोड्डू और जेल का भय।

जिम सब महसूस कर रहा था। उसने कुछ इत्र अपने जैकेट पर छिड़का और बालों में ब्रिलियंटाइन लगाया। सच यह था कि यदि वे उसे आज गिरफ्तार नहीं कर पाए, तो कल कर लेंगे। लेकिन वे उसे रंगे हाथों नहीं पकड़ पाए थे। इसलिए यदि सब ठीक रहा, तो अंत में वे उसे छोड़ देंगे। उस आरामदेह कमरे में बिना सिगरेट के अगले दो–तीन घंटे बिताना तो यातनादायक था। घबराने की क्या बात है, उसने सोचा। जाहिर है, बिना किसी सबूत के उन्हें उसे जल्दी ही छोड़ देना पड़ेगा। उसने गुसलखाने में मौजूद एक अल्मारी खोली। अल्मारी खुलते समय पल्लों के चरमराने की आवाज आई। भाड़ में जाए अल्मारी और सब कुछ। अल्मारी में आर्माण्डा के कपड़े लटके हुए थे। जिम ने अपना रिवाल्वर निकालकर आर्माण्डा के एक चमड़े के जैकेट की जेब में डाल दिया। मैं बाद में अपना रिवाल्वर ले जाऊँगा, उसने सोचा। वैसे भी आर्माण्डा अगले सर्दियों तक इस जैकेट की जरूरत नहीं पड़ेगी। उसने जब जैकेट की जेब से अपन हाथ बाहर निकाले तो पाया कि उसके हाथ में नैप्थलीन की गोलियों का सफेद रंग लग गया था। बढ़िया है, वह हँसा। अब उसकी रिवाल्वर को कीड़े नहीं खा पाएँगे। उसने अपने हाथ दोबारा धोए, लेकिन आर्माण्डा का गंदा तौलिया उसे उबकाई दिला रहा था। इसलिए उसने अपने गीले हाथ अल्मारी में टाँगे एक वस्त्र से पोंछ लिये।

बिस्तर पर लेटे हुए सोड्डू ने गुसलखाने की आती आवाजें सुनी थीं। उसने आर्माण्डा पर अपना एक हाथ रखते हुए पूछा, 'वहाँ अंदर कौन है?'
आर्माण्डा उसकी ओर मुड़ी और अपनी नरम बाँह उसके गले के गिर्द डालती हुई बोली, 'कोई नहीं, वहाँ कौन हो सकता है?'
सोड्डू खुद को आर्माण्डा की पकड़ से छुड़ाना नहीं चाहता था, लेकिन उसे गुसलखाने में किसी के चलने–फिरने की आवाज दोबारा सुनाई दीं। उसने फिर पूछा, 'वहाँ क्या हो रहा है?कौन है वहाँ?'
जिम गुसलखाने का दरवाजा खोलकर शयनकक्ष में आ गया। 'चलो सार्जेण्ट! बेवकूफों जैसा व्यवहार मत करो। मुझे गिरफ्तार कर लो।'
सोड्डू ने अपना एक हाथ कुर्सी पर रखे जैकेट की जेब में डालकर रिवाल्वर पकड़ लिया, लेकिन उसने खुद को आर्माण्डा के आलिंगन से नहीं छुड़ाया।
'कौन हो तुम?'
'जिम बोलरो।'
'खबरदार! अपने दोनों हाथ ऊपर करो।'
'मेरे पास हथियार नहीं है सार्जेण्ट! मूर्खता मत करो। मैं खुद को कानून के हवाले कर रहा हूँ।'
अब वह बिस्तर के सिरहाने के पास खड़ा था। उसका जैकेट उसके कंधों पर पड़ा

था और उसके दोनों हाथ आधे ऊपर उठे थे।
'अरे जिम! यह क्या?' आर्माण्डा ने कहा।
'मैं कुछ दिनों के बाद तुमसे मिलने आऊँगा, आर्माण्डा।' जिम ने कहा।
सोड्डू कुछ बुदबुदाता हुआ बिस्तर से उठकर खड़ा हो गया। उसने फटाफट अपनी पतलून पहनी।
'क्या वाहियात नौकरी है, कभी पलभर का भी चैन नहीं है।'
जिम ने मेज पर से एक सिगरेट उठाकर जला ली और सिगरेट पैकेट अपनी जैकेट की जेब में डाल लिया।
'मुझे भी एक सिगरेट दो, जिम!' आर्माण्डा बोली। यह कहते हुए वह अपने ढीले उरोज उठाये हुए जिम की ओर झुकी।
जिम ने आर्माण्डा के होंठों के बीच एक सिगरेट फँसाई और जला दी। फिर उसने जैकेट पहनने में सोड्डू की मदद करते हुए कहा, 'अब चलते हैं सार्जेण्ट।'
'फिर मिलते हैं, एंजेलो,' उसने कहा।
'फिर मिलें, आर्माण्डा?' सोड्डू ने दोबारा कहा।
'विदा, जिम!'
वे दोनों बाहर की ओर चले गये। गलियारे में लिलिन टूटे हुए सोफे के किनारे पर लटका हुआ सो रहा था। वह हिला तक नहीं। अपने बिस्तर पर बैठी आर्माण्डा सिगरेट पी रही थी। उसने कमरे की बत्ती बुझा दी; क्योंकि अब बाहर से एक धूसर रोशनी पहले से ही कमरे में आ रही थी।
'लिलिन!' उसने पुकारा। 'चलो, लिलिन! वापस बिस्तर पर आ जाओ।' 'चलो, लिलिन प्यारे!' लिलिन पहले से ही अपना तकिया, ऐश–ट्रे वगैरह उठा रहा था।

डागदरी आला (स्टेथोस्कोप)

श्रीमती रजनी शर्मा बस्तरिया, 116 सुनिया कुंज
देशबंधु प्रेस के सामने रायपुर (छ.ग.) मो : 9301836 81

'टिक्की' नाम ही था उसका हर वक्त दर्जी दादा के पास पचासों बार हाजिरी लगाती। दद्दा हमारे फ्राक में जेब लगा ही देना। भूलना नहीं। जिस दिन काले–पीले फूलवाली फ्राक, जिसमें जेब हो, वही फ्राक वह पहनती तो मानो पूरे महल्ले में ताजी हवा की बयार–सी चल पड़ती। कंचों–सी आँखे, हिरनी सी फुदकती दोनों हाथ फ्राक की जेब के भीतर डाले। यहाँ से वहाँ डोलती फिरती। सारे दुनिया जहान से भी बढ़कर खजाना टिक्की की जेब में होता था। कच्ची इमली, चना, फल्ली, टूटी चूड़ियाँ, माचिस के खाली खोखे, पुड़िया बाँधनेवाला धागा। अचानक टिक्की को याद आया अरे, आज 'तिलक' ने वादा किया है कि दोनों मिलकर माचिस के डिब्बे से डागदरी आला बनाएँगे। पर उसके पहले उसे चना, फल्ली की भेंट देनी होगी। खैर, हाँफते हुए टिक्की 'तिलक' के पास पहुँची।

तिलक मुंडेर पर अलसाया धूप सेंकता मिला। टिक्की खुशामदवाले अंदाज में बोली चल ना बनाएँगे डागदारी आला। आज तिलक ने कनखियों से देख लिया था कि टिक्की की फ्राक की जेबें फूली हुई हैं। मतलब खाने का सामान कुछ ना कुछ तो जरूर होगा। यह फरमाइश तो तिलक की झूठी होती थी। वह तो बस उसके ऊपर धौंस जमाने के लिये नखरे मारा करता था। टिक्की ने जेबों के कान पकड़कर उलट दिया। किसी महान आविष्कारक की तरह तिलक ने उन्हें टटोलकर भली भाँति मुआयना किया। फिर वही माचिस के दो खाली खोखो के बीच धागा बाँधा गया। अब यह यंत्र तो तैयार हो गया, उसने आदेश दिया टिक्की तू थोड़ी दूर जा और धागे को तान कर रखना।

तिलक ने माचिस के एक खोखे को मुँह से लगाया और दूसरे सिरे पर थी टिक्की के तिलक चिल्लाया–हो... और आवाज दूर से टिक्की के कानों में पड़ी। एक निश्छल बचपनवाली मुस्कान जो कहीं एक विजेता की भी मुस्कान थी दोनों के चेहरे पर तैर गई।

इतने में अम्मा की तेज आवाज आई–टिक्की! आई अम्मा! कहकर टिक्की दौड़ पड़ी।
यह तो लगभग रोज होता था। कभी टिक्की को एक माचिस भर कर जुगनुओं की बारात तिलक देता था। उस दिन टिक्की की खुशी का ठिकाना ही नहीं रहता था। रात अम्मा की झिड़की से बचने के लिए वह कम्बल ओढ़कर जब माचिस की डिबिया खोलती तो सारे जुगनू कम्बल के भीतर ऐसे चमकते थे जैसे कि काले आसमान में तारे चमक रहे हैं। अगली सुबह वह उन्हें तुरन्त आजाद भी कर देती थी।

बेतार के तारवाले खिलौने से खेलते–खेलते टिक्की और तिलक जाने कब बड़े होने लगे। और अधिकार व स्नेह के तार भी मजबूत होने लगे। बेतार से ही अपनेपन का संदेश स्वयमेव उन दोनों तक पहुँचने लगा था।

बचपन में टिक्की जब अपनी सहेलियों के साथ गुड़िया–गुड़िया खेलती थी, तो वह हमेशा ही डाक्टरनी ही बनती। वही माचिसवाला डागदरी आला लेकर बीमार गुड़िया की धड़कने सुनने की कोशिश करती और परची में खड़िया चॉक की गोलियाँ बनाकर अपनी सहेलियों में बाँटती फिरती।

''सुना है चाँदनी सूरज का ही परावर्तित प्रकाश है। पर चाँदनी की प्रशंसा पर सूरज को कोई शिकायत नहीं है। तब भला टिक्की के स्थान पर तिलक डाक्टर हो जाये क्या फर्क पड़ता है?पर नियती को कुछ और ही मंजूर था। तिलक आज डाक्टरी की पढ़ाई के लिये बाहर जा रहा था। धड़कन नापने की मशीन बनाने वाले को बिना 'टिक्की की धड़कनों की सुनवाई' भला किसके सामने होती?घर की छत से टिक्की ने तिलक को तांगे पर बैठे देखा। जाने कितना कुछ अनकहा सा रह गया था दोनों के बीच।

घर के कामों में पारगत होती टिक्की ने भी अपनी पढ़ाई गांव में पूरी की। पर उसकी उस ख्वाहिश का क्या कि उसके गले में भी डागदरी आला लटके। आज उसकी धड़कनें बेवजह धकधक–धकधक चलने लगी थी। मन बुझा–बुझा सा था, बहुत से अजनबियों का आज उसके घर में डेरा जमा था। बाबूजी खातिरदारी में जुटे थे, माँ परदे की ओट से सारा सामान देती जा रही थी। अचानक आवाज आई। एकादशी के बाद ब्याह होगा।

टिक्की को यकीन ही नहीं हुआ कि उसे इतना बड़ा बना दिया गया कि उसकी गुड़िया फ्राक, डागदरी आला, जुगनु और हाँ, तिलक का साथ सब इतनी जल्दी एक साथ पराये हो जाएँगे।

मन बुझ–सा गया था। टिक्की की उदासियाँ बढ़ती गयीं। धड़कनें अब कहना मानने से इंकार करने लगी। चेहरा पीला पड़ने लगा। आज तो तिलक की अम्मा आई थी, कह रही थी। तिलक तो डॉक्टर बन गया है, उसकी शादी भी शहर की डाक्टरनी से पक्का हो गया है।

उफ्फ टिक्की का मन कैसा–कैसा तो होने लगा?हाथ पैर शिथिल। उसे समझ में ही नहीं आ रहा था कि उसके साथ यह सब क्यों हो रहा है?बल्कि उसे तो खुश होना चाहिये था ना कि उसका ब्याह तो पक्का हो गया था। देवउठनी एकादशी तक टिक्की तोरई की नार की तरह मुरझाने लगी थी। चेहरा तोरई के फूल सा पीला पड़ने लगा था।

वैद्य, हकीम के प्रयास से जरा–सी स्वस्थ हुई तो ब्याह के बाद शहर निवास हो गया। शुरू–शुरू में बेहद अनमनी–सी रहती थी?टिक्की कहाँ वहाँ गाँव की अमराई सौंधापन और कहाँ यह शहर में सारी सुविधाएँ थीं। पर मन तो रमता ही नहीं था।

बालकनी में बैठे–बैठे गाड़ियों की तेज हार्न से बचने के लिये टिक्की कानों पर हथेली रख लिया करती थी। बाईस की भी नहीं थी और इतने बड़े कंक्रीट के जंगल में अकेले रहकर पति की बाट जोहती। वज्राघात तो अब हुआ, जब लोगों की भीड़ उसके घर में आ जुटी थी। नियती ने अकस्मात् वैधव्य उसकी झोली में जो परोस दिया था। एक्सीडेंट में कालकवलित हुए पति के शव के सामने ही वह मूर्छित हो गई। जाने किस डाक्टर ने उसकी नब्ज टटोली। हृदय पर डागदरी आला पड़ते ही धड़कनें सक्रिय हुईं। अरे, यह क्या?वह तो मूर्छित थी, पर धड़कने कुछ और ही गवाही दे रही थी। धड़कनों और डागदरी आला की जुगलबंदी शुरू हो गई थी। यह तो पहचाना हुआ स्पर्श है। बचपन के बेतार के तार वाला टिक्की को इस असमय वैधव्य से उपजे विषाद को भुलाने हेतु गाँव ले जाया गया।

बिस्तर पर लगभग मूर्छित अवस्था में कई हफ्तों तक पड़ी रही।

अवचेतन में कई माह पश्चात् भी यह दुखदायी घटना की छाँव धुंधली नहीं पड़ रही थी। सालभर बाद उस घर में अचानक पहचानी सी कदमों की आवाज गूंजी। टिक्की की धड़कनों ने पहचान लिया। शरीर अब भी साथ नहीं दे रहा था। सच कहते हैं–यह अवसाद प्राण लेकर ही छोड़ता है अगर ढंग का इलाज न हुआ तो?घरवालों की इजाजत लेकर आज तिलक उसके घर गाँव आया था। लगभग पस्त पीली पड़ी मूंदी आँखोंवाली टिक्की को देख तिलक मन ही मन सिसक उठा। यह वही टिक्की है, जो खुद डाक्टरनी बनी फिरती थी और सारे गुड़िया–गुड्डे का इलाज करती थी।

तिलक ने नब्ज टटोली। टिक्की की धड़कनों ने जिन्होंने टिक्की के साथ चलने से इन्कार कर दिया था। अचानक बरसों से अवचेतन में पड़े आत्मीयता की गुहार सुनी, वापस लौट पड़ी चलने लगी धक–धक–धक–धक।

टिक्की की धड़कनों ने तिलक के डागदरी आला से सारी बातों की चुगली कर दी। उलाहना भी दिया कि कैसे डॉक्टर हो?जो टिक्की की धड़कनें नहीं नाप पाये, जब तुम्हारे आने से वे बढ़ जाती थी।

तिलक की आँखें भीग चुकी थी। वह मन ही मन प्रायश्चित कर रहा था। हाँ टिक्की! मैं कहाँ का डॉक्टर हूँ, जो तुम्हारे मन की धड़कनें नहीं नाप सका। तुम्हारी इस हालत का जिम्मेदार मैं ही हूँ और तुम तो बिना डागदरी आला पहने ही मेरी धड़कनों को नाप लिया।

आज बरसों बाद टिक्की को शिक्षा की डगर में आगे बढ़ाकर वह दिन भी आ पहुँचा था। टिक्की के गले में डागदरी आला स्टेथोस्कोप डालकर तिलक गर्व से उद्घोषणा कर रहा था। यह है गाँव की प्रथम महिला डाक्टर। धड़कनों ने फिर से शोर मचाना शुरू कर दिया। टिक्की की धड़कनों का धड़कना आज बिना स्टेथोस्कोप (डागदरी आला) लगाये तिलक ने सुन लिया था। धक–धक, धक–धक। शुक्रिया डागदरी आला 'स्टेथोस्कोप'।

लघुकथा :

–सत्य शुचि साकेतनगर
व्याबर, राजस्थान
9413685820

1. इमदाद

डॉक्टर ने संभाव्य के खतरे को भांपा था और दिखाने के तौर पर पुलिस की तीखी भर्त्सना का यत्न भी किया। इतना करने के बावजूद भला वे अनधिकार चेष्टा हस्तक्षेप क्योंकर करते?

जब पुलिस से दाँतकटी रोटी जैसा ताल्लुकात रहा हो तो उनकी ख्वाहिश थी कि वे अपना रोल पुलिस की उपस्थिति में प्रारंभ करे। लोगों में उत्तेजना–तनाव थिरक आया और आँखों में गरम कोयले सुलगने लगे। मगर जली महिला को बचाने का उनका मोर्चा ठंढा पड़ गया।

माहौल का सर्वेक्षण के बाद इस बार भी डॉक्टर ने अपने को सहेजा था, जो कि उसमें एक तरावटभरा उद्वेग सृजित हुआ। हाथों में मीठी–मीठी सी खारिश चलने लगीं और उनकी दृष्टि उचटकर पुलिस के फोन पर चली गयीं। एक बोझ उनके दिल पर था, जो जल्दी ही फ़ना हो गया। उनकी निगाहें आभारयुक्त थीं।

2. दोस्त–दोस्त

वह अपने उस दोस्त से मिलना चाहता था और इत्तफाक से वह उसे घर पर ही मिल गया। उसके यहाँ बैठकर उसने चाय पी। थोड़ी इधर–उधर की बातें–गप्प की। तत्पश्चात् उसने आने का मकसद स्पष्ट किया और वह बोला, 'यार! वो कैलाश मेरे घर पहले से आता रहा है, लेकिन इन दिनों उसकी बदनजर मेरी बहन पर है, ऐसे में तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? 'करना–धरना क्या?' वह दोस्त तनिक गंभीरता ओढ़े–ओढ़े चहका, 'यार! तुमने भी टॉपिक छेड़ा है?अरे! तुझे तो अपनी बहिन पर फक्र करना चाहिए कि इस दुनिया में उसे भी कोई देखता है! और फिर जहाँ खूबसूरती हो, तो वैसे भी अच्छी चीजें देखने के लिए ही होती है, समझे।' वह अब मुँह फाड़े–फाड़े उसे नपुंसकता–सा निहारता रहा। शायद, वह उसके अहसानों से दबा हुआ था। इतने पर भी क्षणों में ही काँपता–काँपता बुदबुदाया, वह कितना छला गया है अपनों से ही! और वह छटपटाकर रह गया।

3. बहू

शादी के बाद बहू के ठाट ही ठाट हो चले थे और कुछ दिनों में उसके अपने व्यवहार से परिवार के लोग भीग गये थे। गौरतलब है कि अब पति घर में नौकर था, जबकि सास नौकारानी! मगर किस्सा–कसूर यह है कि बहू अपनी मम्मी के घर नौकर–चाकरों के बीच रही, पली–बढ़ी भी! इसलिए वह खुद को इस घर के अनुरूप ढाल नहीं सकी और एक दिन बड़े दंभ–सा वह बुदबुदाई, 'आज घर मेरे बस में है, न कि किसी और के!'

लघुकथा :

एन.आर. श्याम
मंचेरियल (तेलंगाना)
817917800

पॉकेटमार

आठ–दस एकड़ के क्षेत्र में फैला विशाल मंदिर। दर्शनार्थियों की लंबी लाइन। लाइन में लगने से दर्शन के लिए पाँच–छह घंटे से कम समय लगनेवाला नहीं। दर्शन की न तो उसमें कुछ दिलचस्पी है और न ही ईश्वर में किसी तरह का विश्वास। पर उसके साथ आए मित्र और उसकी धर्मपत्नी को ईश्वर के प्रति गहन आस्था। उनका मन रखने के लिए वह भी उनके साथ चला आया था।

प्रोग्राम फिक्स था। उनके पास इतना समय नहीं था। उसकी धर्मपत्नी के चेहरे पर निराशा। उसे लग रहा था, मानो नदी के पास आकर भी उन्हें प्यासा ही लौटना पड़ रहा है। क्या करें, यही वे सोच रहे थे कि उनके पास एक पंडा आया। उसने ग्यारह सौ रुपये में सारा मंदिर घुमवाने और भगवान के दर्शन करवाने की बात कही। यह था भगवान के दर्शन का शार्टकट रूट। खैर खींचातानी कर मित्र की धर्मपत्नी ने पाँच सौ रुपये में सौदा तय किया। सस्ते में सौदा तय होने पर जहाँ एक तरफ उसके चहरे पर विजयी मुस्कान थी, तो दूसरी तरफ भगवान के दर्शन का मौका न खो देने की खुशी। बोली–'भगवान अपने दर्शन के लिए कुछ न कुछ रास्ता निकलवा ही देता है।'

पंडा उसे भगवान का भेजा हुता दूत लग रहा था। जब वे मंदिर के परिसर में घूम रहे थे, तो एक जगह लिखा हुआ था–'चोर और पॉकेटमारों से सावधान।

उसने पंडा से पूछा, 'यह तो भगवान का मंदिर है। लोग उसके दर्शन करने के लिए आते हैं। यहाँ पर भी चोरी और पॉकेटमारी?भगवान अपने भक्तों को इससे नहीं बचा सकता है क्या?' पंडा बोला, 'चोर भी तो भगवान से प्रार्थना करके आता है कि उसे अच्छा कस्टमर मिले और वह पकड़ा भी न जाय कहकर न।'

डॉ. आशा सिंह सिकरवार
अहमदाबाद (गुजरात)

बुजुर्गों के बीच

जब भी बैठती हूँ बुजुर्गों के बीच
देखने लगती हूँ उनके हाथ–पाँव खूब गौर से
उनके उजले–उजले बाल जो रंगे हुए नहीं होते
मुझे बहुत अच्छे लगते हैं
उजले बालों के बीच ही कहीं–कहीं
कुछ रेखाएँ होती हैं काले बालों की
जो कहती रही हैं गाथाएँ
जिन्हें सुनना होता है हमें धीरे से

उनके शरीर की चमड़ी जो पड़ गई होती है ढीली
और लटकने लगती है एक–एक ईंच नीचे
जी करता है छू लूँ और सहलाऊँ धीरे से
मैं अक्सर बैठ जाती हूँ उनके बहुत पास
और निहारती हूँ उनके चेहरों की रेखाएँ
जो होती हैं कहीं सीधी कहीं आड़ी कहीं तिरछी
जिनमें समाहित होती हैं उनकी सारी पीड़ाएँ
और सबसे प्यारी बात तो यह है
कि जो बातें बताई गई थीं उन्हें कुछ दिनों पहले ही
वे उन्हें तनिक याद नहीं रहतीं
उन्हें फिर बतानी होती हैं वही बातें धीरे से

अपराजिता

अपराजिता हूँ
जब अपनी पराजय
महसूस करती हूँ निपट अकेली
एकांती क्षण में
अश्रुधारा क्षण में
अश्रुधारा बह निकलती
नहीं दीखता कोई
संपूर्ण भू पर
खड़ी निर्झर पेड़ जैसी
तब पहुँचती सूरज के पास
सोच लेता है वह
मेरी पीड़ा
मैं भर जाती हूँ पुनः ऊर्जा से
बैठ जाती हूँ घने
छायादार वृक्ष के नीचे सोचती हूँ
कैसे ज़रा बनकर झुका है मेरे ऊपर
देखती हूँ उसके निःस्वार्थ भाव को
वह नहीं पूछता राहगीर से
क्या है मजहब
क्या है जाति
नहीं उसके चित्त में
कोई लिंग भेद
वह सबकी भूख को
एक नज़र से देखता है
सबके लिए उसके पास बैठा फल
सबको बाँटता है एक जैसी छाँव
कि लौट आती हूँ अपने में
फिर से रक्त दौड़ने लगता है
मेरी नसों में
जीने की ज़िद फिर से मनाती है मुझे
मुझे जीना है
अभी और, और जीना है, मैं अपराजिता हूँ
नहीं हार सकती मैं
नहीं रुक सकती मैं
स्वयं से ही लड़ना है अनेक मोर्चे पर
फिर से
खुद की तैयार करती हूँ
अभी और सैकड़ों–
सैकड़ों लड़ाइयों के लिए

कविता :

माँ

संजीव वर्मा 'सलिल'
नोपियर टाउन, जबलपुर
9425183244

माँ हृदय की पुकार है
ममत्व की धार है
मन की प्यास है
माँ एक मृदुल एहसास है

माँ प्रेम की रीत है
जीवन का संगीत है
समर्पण का आधार है
माँ ईश्वरीय अवतार है

माँ आशा और विश्वास है
जीवन का उल्लास है
आँगन की धूप है
माँ प्रेम का रूप है

माँ कविता है, कहानी है
आँखों का पानी है
हृदय का आभार है
माँ! शिशु का संसार है

माँ ज्ञान है, विज्ञान है
धर्म है, ईमान है
पूजा है, ध्यान है
माँ जीवन का आख्यान है
माँ त्याग है, समर्पण है

स्नेह का दर्पण है
सपनों का शृंगार है
माँ ईश्वर का अनुपम उपहार है।

कविता :

प्रिया देवांगन 'प्रियू',
पंडरिया, कबीरधाम (छ.ग.)
7697282458

बचपन

बचपन कितना सुहाना था, सुबह होते स्कूल जाते
थककर आते तो भी खेलने जाते
न किसी का बोझ सहना, न किसी पर बोझ बनना
छोटी सी बातों में रोना, छोटी सी बातों में हँसना
न रोने की वजह थी, न हँसने का बहाना
बारिश की फुहारों से खेलना, और उसका गुदगुदाना
कागज की नाव बनाकर, कितने खुश हो जाते थे
बच्चों के संग मम्मी पापा, बच्चे बन जाते थे
थोड़ी–सी बातों में रूठना, फिर सबका मनाना
कितना अच्छा वो फ़साना
न किसी की फिक्र थी, न किसी का गम था
कहाँ गया वो बचपन, जिसमें खुशियों का खजाना था
बचपन कितना सुहाना था, बचपन कितना सुहाना था।

ग़ज़लें

दिनेश 'तपन'
भागलपुर
9431090390

जला देना या मिट्टी में कहीं यारो दफ़न रखना
कबल इसके तिरंगे का मेरे ऊपर कफ़न रखना
रहेंगे याद में हम तो हवाओं में फ़िज़ाओं में
दिलो ज़ां से मगर महफ़ूज़ तुम अपना वतन रखना
उठेंगे जुल्म के शोले, फिजा दहशतज़दा होगी
लगेगी आग हर सू तब बुझाने का यतन रखना
जहाँ लाजिम हों पर्देदारियाँ भारत की मिट्टी को
बेहुरमत हो रही अस्मत पे पर्दा दफ्अतन रखना
लड़ो तुम आन की ख़ातिर कि हिन्दुस्तान की खातिर
कभी गर जान भी जाए तो अपना बाँकपन रखना
रहे शादाब और खुशहाल अपने देश की धरती
तुम्हारा फ़र्ज़ बनता है सजाकर यह चमन रखना
गुज़र जाएँगी ये सदियाँ, बदल जाएँगी तहज़ीबें
बुलंदी पर रहे भारत यही ज़ज़्बा 'तपन' रखना।

कहूँ क्या मैं जमीनो आसमां से
मुझे कहना है अब कुछ कहकशां से
मुसलसल जुल्म ही जो सह रहा है
कभी पूछा है क्या उस बेजुबां से
बनाते ख्वाब में ही जो घरौंदे
सुना दुख–दर्द क्या उन लामकां से
मुसर्रत का ही जब टोटा हुआ हो
खुशी माँगे तो कोइ दे कहाँ से
बड़ी खामोशियाँ तारी हैं उनपर
जो कल तक हमारे बागवां से
मुखालिफ में खड़ा होना पड़ेगा
यही मैं कह रहा हूँ नौजवां से
जरा इस वक्त की धड़कन सुनो तुम
कहो फिर दास्तां सारे जहाँ से
मैं पूछूँगा 'तपन' तकदीर उनकी
वतन से रहनुमां से पासवां से।

तकदीर ने मेरे लिए जो ख्वाब लिख दिये
कैसे कहूँ कि सबके सब खराब लिख दिये
मिलने की मुहलतें कई मुझको मिलीं मगर
दीदार के ही वक्त में हिज़ाब लिख दिये
मेरे सफ़े में थीं अयां वीरानियाँ फ़क़त
मौजो बहार और उन्हें शबाब लिख दिये
इक नामुराद मैं ही था हाक़िम न बन सका
उनकी बड़ी तकदीर थी नवाब लिख दिये
बँटने लगीं खुशियाँ तो कतारों में मैं न था
काँटे मेरे हक में उन्हें गुलाब लिख दिये
महरूम वे पीने से रहे जिनको थी तलब
पीना मना था मुझको तो शराब लिख दिये
यूँ कम नहीं था बोझ उठाने के लिये भी
कुछ और मेरे नाम जो असबाब लिख दिये
माज़ी से अब तलक 'तपन' देखी तीरगी
बातें थीं मशर्रत की तो अज़ाब लिख दिये।

कभी उल्फत कभी इकरार बनकर
मिली वो आज मुझसे प्यार बनकर
खुशी से भर गया दामन हमारा
गले लिपटी गले का हार बनकर
न माई बाप के रोके रुकी वह
खड़ी दुनिया भी थी दीवार बनकर
यही दीवानगी पागल मुहब्बत
दिलों को जोड़ती तार बनकर
मुकद्दस चीज होती है मुहब्बत
न लूटने दो उसे बाजार बनकर
हवा हूँ आग पानी की इबारत
पढ़ा जाता हूँ मैं अखबार बनकर
सच्चाई के लिए लड़ता रहूँगा
'तपन' मैं तेग औ तलवार बनकर।

कविता

मोक्ष

डॉ. नीना छिब्बर जोधपुर, 9461029319

शब्दों के आसन पर बैठकर
भावों की माला फिराती है
दबी–छिपी तरंगों से मुक्ति दिलाती है
कविता रोग है
अविराम तरंगित हो मन पर छाती है
बेताल के तारों से कंपित हो जाती है
भीतर के रोगों को बाहर ले आती है
कविता स्वप्न है
अधखुली आँखों में स्वप्न भरती है
अनचाहे रिश्तों के जाल बुनती है
स्वप्नों की सार्थकता को बल दे जाती है
कविता राग है
मन की तरंगों को हौले से छूती है
साँसों की वंशी पर वैराग्य सुनाती है
अबोले शब्दों का मानस रचाती है
कविता आकाश है
मन के आकाश पर बादल सी छाती है
नीरभरी बदरी बन आँसू पी जाती है
सिन्दूरी आभा से शब्दों को घोलकर
कविता के माथे पर बिन्दिया सजाती है
कविता शक्ति है
बाँह पकड़ अहम को रसरिक्त करती है
एक की वेदना सबको सहलाती है
विश्वबंधुत्व एवं शांति का सबक सिखाती है।

नीना छिब्बर
जोधपुर (राजस्थान)
9461029319

रिश्ते

कुछ रिश्ते अजीब होते हैं
वे बनते हैं सड़कों पर चौराहों पर
भीड़ भरी राह में टैम्पो की सीट पर
कुछ रिश्ते अजीब होते हैं
शब्द भाव और तनाव से दूर होते हैं
ढोते नहीं अनजान चाहों को
नहीं चाहते दखल हदबंदी में दिल को
कुछ रिश्ते अजीब होते हैं
वे मूक रहकर दुखों को सहलाते हैं
बंद होंठ मुस्काते हैं
अनजान सफर को कम करते हैं क्षण में
कुछ रिश्ते अजब होते हैं
वे बाँटते नहीं दुःख को सुख को घटाते नहीं
ठिठके से छिटके से दूर–दूर रहते हैं
क्षणों में बँधकर जीवन को जीते हैं
कुछ रिश्ते अजीब होते हैं

छोटी–छोटी सी बात

याद है मुझे बरसों पहले
अवगुंठित वधू वेश में
सकुचाई आई थी इस घर में
अँधेरी बीती रात में
घर ने हँसकर मुझे
भर लिया था बाँहों में
लेकिन चीजों से परिचय
नहीं हो पाया था–यह याद है मुझे
अँधेरा जो था, सब अधजगे
अधसोये से थे लोग, चीजें भी
आकृतियों की पहचान अँधेरा
लील जो लेता है
भोर की अँखुआई किरण के आने के
पहले ही आदतन मैं जागी थी

सबसे पहले...
उन भिनसारे में, घर के भीतर दबे पैरों
दाखिल होती धूप की फैलती उजास में
मेरी जान–पहचान की शुरुआत हुई थी
घर के लोगों से और न जाने कितनी चीजों से
यह बरसों पहले की बात है
बरामदे की रेलिंग से घर के बीच
चौकोर आँगन दिखा और
कुछ और भी देखा मैंने कि बस
चिहुँक सी गई चक्की (जाँता)
शहर के घर में इसका क्या काम
किससे पूछती, नया माहौल और
अनजाने लोगों का संकोच
धीरे–धीरे तो जान ही गई कि
बड़ी अम्माँ अपने दोनों पैरों के बीच
जाँते के दबाये

लघुकथा

अंतिम यात्रा

जयकृष्ण कुमार
तिलकामांझी, भागलपुर
9162439176

जी हाँ, मैं उसी यात्रा की बात कर रहा हूँ। जब इंसान का पार्थिव शरीर फूलों से सजी कच्चे बाँस की अर्थी पर सवार हो इस भूलोक से सदा के लिए अपना वजूद खोने अग्रसर होता है। एकमात्र सफर जिसमें विदा होनेवाले की भावनाएँ जरा भी स्पंदन महसूस नहीं करता, जबकि तमाम बंधु–बांधव की आँखों से अश्रुधार बहते हैं। निवासस्थल के आखिरी मोड़ तक छोटे–बड़े, औरत–मर्द, बूढ़ा–जवान, आस–पड़ोस, दोस्त–रिश्तेदार तमाम लोग आते हैं। आखिरी विदाई पर संवेदना प्रकट करने, कई तो खून के रिश्ते का ना होते हुए भी काफी दुःखी दीखते हैं। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकलती है और फिर वह माहौल इतना गमगीन हो जाता है कि मन, आत्मा एकाएक सवाल कर उठता है कि क्यों आखिर लोग हमसे जुदा हो जाते हैं?क्यों उस चिरनिन्द्रा में चले जाते हैं, जहाँ से हमारी आँखों से बहते आँसुओं की धारा को पोंछ नहीं सकतें काश कि वो हमारे दर्द को, हमारे प्यार को देख पाते, काश कि वे हमारे क्रंदन और व्याकुलता देखकर हमारे पास लौट आते। परन्तु कहाँ संभव है ऐसा?कोई कोई हमारी आवाजों को सुन सकता है मृत्यु के उपरांत।

निवासस्थल के आखिरी मोड़ से सफर शुरू होता है। जीवन की सच्चाइयों को स्वीकार कर एक बार पुनः सांसारिक वास्तविकताओं को महसूस करने की। अब बस वे लोग साथ चलते हैं, जिनकी भागीदारी होनी अंतिम क्रिया में यानी जो माध्यम होंगे, उस पार्थिक शरीर के अवसान का।

रामनाम सत् है कि लगातार दोहराने के साथ ही अहसास के जीवन का आखिरी सत्य है। हमने क्या किया कि जीवन में वह सब बस एक याद एक कीर्ति बनकर रह जाता है इस संसार के लिए। हमने कितना कमाया, क्या इकट्ठा किया और किस कदर अपने जीवन को जिया। वह सब पीछे छूट जाता है। हमारे मनोमस्तिष्क को झकझोरती है, लेकिन फिर धीरे–धीरे लोग इन मनोभावों से निकलने लगते हैं, पुनः सांसारिक होते जाते हैं, ज्यों–ज्यों श्मशान नजदीक आता जाता है।

चूँकि हमारे यहाँ लकड़ियों की मदद से पार्थिव शरीर को जलाया जाता है, इसलिए 3–4 घंटे का वक्त लग जाता है। इसलिए साथ आये लोग क्रियाकलाप शुरू करने से पहले कुछ जलपान करते हैं, परन्तु यहाँ कुछ लोग भूल जाते हैं कि हम मातम की इस घड़ी में कैसा व्यवहार करें। साथ चल रहे उस पार्थिव शरीर के परिजन बस मूरत बने रहते हैं, उनके दर्द का अहसास किसी को नहीं रह जाता है उस वक्त। साथ आए लोग जिसे बाराती भी कहा जाता है। यूँ तो बाराती शब्द शादी समारोहों के लिए ही उपयोगी प्रतीत होता है; परन्तु लोग यहाँ भी प्रयोग करते हैं। शायद इसीलिए कुछ लोग इस कदर अपनी फरमाइश के नाश्तों की माँग करते हैं, जैसे लगता है कि खुद आखिरी यात्रा पर निकले हों। काफी दुःख होता है, ऐसी घटनाओं पर, परन्तु पता नहीं फिर भी क्यों लोग ऐसा करते हैं, जबकि आज ना कल उन्हें भी इस वक्त से दो–चार होना ही होगा; क्योंकि कोई भी इंसान इस संसार में बिल्कुल अकेला नहीं होता।

खैर इन सबों के बाद ले जाया है, पार्थिव शरीर को गंगा के किनारे लकड़ियों के ढेर पर सजायी जाती है चिता, आग लगाई जाती है किसी अपनों के द्वारा ही और फिर विलीन हो जाता है नश्वर प्रकृति में, समस्त तत्व पुनः प्रकृति को लौटाकर वह हमेशा–हमेशा के लिए हमारी आँखों से ओझल हो जाते हैं और हम पुनः लौट आते हैं सांसारिक जीवन में। उनकी अच्छाइयाँ हमें हमेशा प्रेरित करती हैं। वे हमारी यादों का हिस्सा बन जाते हैं।

परन्तु फिर भी कुछ लोग भूलकर इन सच्चाइयों को कि जीवन का कुछ भी हमारे लिए नहीं है, सिर्फ अच्छे या बुरे कर्म ही हमारी विरासत होंगी, फिर भी इंसान जुट जाता है। येन–केन प्रकारेण धन–दौलत इकट्ठा करने में, आत्मा को दूषित कर शरीर को सँवारने में, जबकि सबको पता है कि अंतिम यात्रा आपको भी तमाम भौतिक संसाधनों के बिना तय करना है। छोड़ जाना है सब कुछ इसी संसार के लिए, फिर छीना–झपटी किसलिए?जो आपकी जरूरत है, जो आपके मेहनत का फल है, स्वीकार करें, ताकि एक स्मृति रहे लोगों के जेहन में, वरना हर बार जब आप किसी पवित्र आत्मा से धिक्कार पाते हैं, तो आपकी एक अंतिम यात्रा होती।

लघुकथा

टोंटीदार लोटा

बी.डी. बजाज
गुजरांवाला टाउन, दिल्ली
मो० 9899263030

बहुत दिनों के बाद दिख गया मुझे अजीब सी आकृतिवाला फूल–पत्तियों से सुसज्जित टोंटीदार लोटा सफेदी करवानी थी हार में सारा सामान उलट–पुलट होना ही था एक तरफ बैठा मैं देख रहा था इस पुरातन कलाकृति को याद आए मुझे वे बचपन के दिन जब हम भाई–बहन देखकर इस लोटे को हँसते थे–ठहाके लगाते थे पूछते थे माताजी से एक शरारत पूर्ण लहजे से किस काम का है यह ऐतिहासिक लोटा हमारा मज़ाहिया लहज़ा सुनकर एकदम गंभीर हो जाती थी हमारी माता कहतीं यह मुझे दहेज में मिले बर्तनों में से एक है मत उड़ाओ इसका मज़ाक, बेबात यह है मेरे माता–पिता की प्यारी सौगात हँसी की बात हँसी में खत्म हो गई न मालूम क्यों मेरी माता ने इसे कहीं छुपा लिया हम सब बच्चे भूल गये इस हँसी के पात्र को आज बरसों बाद सफेदी के दौरान बेचा जाने लगा कबाड़ियों को घर का फालतू सामान अचानक यह टोंटीदार लोटा हुआ नमुदार मैं ऊहापोह में था–इसको बेचूँ या सहेज रखूँ अपनी माता की निशानी मानकर लेकिन देखी अपने पोत्रों की आँखों में खिलंदरी हँसी की झलक एक व्यंग्य और कौतूहल पूर्ण मुस्कान और जाग उठी स्मृति बचपन की दहलिज पर खड़ा मैं अचानक यह अनूठी कलाकृति छूटी मेरे हाथ से सीढ़ियों से गिरते इसके वजूद को टन–टन की आवाज मैं सुनता रहा टोंटी भी टूट गयी उस बेसहारा की साइड में बड़ा सा सुराख उड़ा रहा था मज़ाक उसका मानो कर दिया इस लोटे ने अपने आप ही अपना अंतिम संस्कार इस तरह विदाई हुई माताजी की धरोहर की समय के अंतराल में दौलत बनी यह कबाड़ियों के हाथ की।

प्रतिवेदन

अंगिका महोत्सव 2019

तमाम अंगिका प्रेमियों का हार्दिक अभिनन्दन!

अंगिका एक भाषा है जो अंग से बनी है। यह बिहार की पूर्वी, उत्तरी व दक्षिणी भागों, झारखण्ड के उत्तरपूर्वी भागों और पश्चिम बंगाल के पश्चिम भागों में बोली जाती हैं। इसका उद्‌गम मुख्य रूप से अंगप्रदेश द्धपुराना भागलपुर प्रमंडलऋ रहा है, जिसमें सुपौल, अररिया, किशनगंज, मधेपुरा, पूर्णिया, सहरसा, बेगुसराय, खगड़िया, कटिहार, शेखपुरा, लखिसराय, मुंगेर, जमुई, बाँका, गोड्डा, साहिबगंज, पाकुड़, गिरीडीह, देवघर, दुमका, जामतारा, आदि क्षेत्रा आते हैं। अंगिका को लोग छै–छा के नाम से भी जानते हैं। अंगिका हिन्द–यूरोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत आती है, जो हिन्द आर्य उपशाखा के अंतर्गत है। इन समस्त भाषाओं के पूर्व यहाँ संस्‍ त भाषा ही थी। धीरे–धीरे इसके विकास के शुरूआती दौर को प्रा‍ त और अपभ्रंश के विकास से जोड़ा जाता है। लगभग 8 करोड़ लोग अंगिका को मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। इसके प्रयोगकर्ता भारत के विभिन्न हिस्सों सहित विश्व के कई देशों में फैले हुए हैं।

अंग महाजनपद व अंगिका का इतिहास देखा जाए तो राहुल सां‍ त्यायन ने साफ किया है कि अंगजनपद की स्थापना मध्य ;ग्वेद काल के पूर्व हो चुकी थी(बौ)काल के बौ) धर्म में जिन सोलह महाजनपदों का उल्लेख है उसमें अंग महाजनपद छठे स्थान पर है। बौ) ग्रंथ ललितविस्तर में उल्लिखित चौंसठ लिपियों में 'अंग लिपि' चौथे स्थान पर है। उन्होंने सहरपा, शबरपा, धर्मपा, चम्पपा, लुचिपा जैसे अधिकांश सि) कवियों की जन्म स्थली अंग ही चिह्नित की है। महाभारत और मत्सपुराण में लिखा है कि अंग प्रदेश का नाम उसके राजकुमार के कारण पड़ा जिसके पिता दानवों के सेनापति थे। प्राचीनकाल में अंग देश की राजधानी चंपा थी। रामायण और महाभारत काल में अंग देश की राजधानी भगदत्तपुरम का जिक्र आता है जो आज भागलपुर है। यहाँ की भाषा अंगिका को लोगों ने दखनाहा, मुंगेरिया, देवघरिया, गि)ोरिया, धरमपुरिया आदि कहकर खंडित करना चाहा, किन्तु ये सभी अंगिका भाषा ही हैं। यह लोकभाषा यहाँ की मातृभाषा है। यह हमारा दायित्व है कि अपनी मातृभाषा की रक्षा करें, क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि बहुतेरी लोकभाषा लुप्तप्राय होती जा रही है जो हमारी संस्‍ ति से जुड़ी होती हैं। अगर कोई एक लोकभाषा विलुप्त हो जाती है, तो भाषा के साथ सामुदायिक इतिहास, बौ)िक और सांस्‍ तिक विविधता, सांस्‍ तिक पहचान भी लुप्त हो जाती है। यह क्षति किसी एक की क्षति नहीं होती बल्कि सबकी क्षति होती है। अतएव इसकी सुरक्षा की जबावदेही हर समाज, प्रांत, राष्ट्र और शासकीय पदासीन पदधारकों की भी होती है। कोई भी अपनी जिम्मेदारी से पीछे नहीं हट सकते हैं, उनका उत्तरदायित्वबोध कहता है कि इसे उचित प्रतिष्ठा देकर मार्ग प्रशस्त करें।

भाषाएँ केवल संचार का माध्यम भर नहीं होतीं बल्कि संस्‍ तियों का झरोखा होती हैं, संस्‍ ति और संस्कार की संवाहिका होती हैं। इसकी समुन्नति पूरे समाज का मूल्य बदल देती है। लोक भाषा या मातृभाषा का अभिप्राय उस परिवेश, स्थान, समूह में बोली जानेवाली भाषा से है, जिसमें रहकर कोई भी व्यक्ति अपने बाल्यकाल में दुनिया के संपर्क में आता है। अकेली माँ बच्चे के परिवेश के लिए उत्तरदायी नहीं है और न ही जन्म कें लिए। इसी जननी–भाव की रक्षा के लिए मातृपरिवेश की सुरक्षा हेतु संस्‍ ति के सार–तत्व के अविभाज्य के लिए अंगप्रदेश के साहित्यकारों तथा बु)िजीवियों ने इस महोत्सव का आयोजन कर सांस्‍ तिक कार्यक्रमों से, अभिनयों से, लोकनृत्य, लोक लघु फिल्म तथा विभिन्न परिचर्चाओं से अपने अंग प्रदेश की अंगिका भाषा के संपोषण में हाथ बँटाकर समाज व राष्ट्र को अतीत, वर्तमान और भविष्य का बोध कराया। किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आत्मीय परिवेश जरूरी है, जिसमें हर व्यक्ति अपनी सोच और भावनाओं को बगैर डर और संकोच के व्यक्त कर सकें। महोत्सव में अंगिका भाषा की पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन यह बोध कराता है कि आज के समय में अंगिका केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अंगिका की जड़ें समाज और राजनीतिक विषयों, मीडिया प्रसारण लोक संस्‍ ति और लोकप्रिय संस्‍ ति तक फैल चुकी है। इस महोत्सव का उद्देश्य अंगिका भाषा के सौंदर्य भाषा की धरोहर को सहेजना व उसके बदलते स्वरूप का प्रदर्शन करना एवं अंगिका भाषा के प्रयोग और उसमें आए विविध बदलावों को दर्शाना है।

मैं अंगिका भाषा के लिए समर्पित इस महोत्सव में अंगिका की तमाम शक्तियाँ चाहे वे लेखक जगत, सामाजिक सरोकारों से जुड़े संगठन, अंगिका भाषा के तमाम प्रकाशक हों से एकजूट होने की अपील करता हूँ। एकजूटता ही शक्ति है। विचारों में हम सभी के मतभेद भले ही हों लेकिन भाषा के गौरब हेतु हमें संगठित होना ही होगा। हमारी कोशिश रही है कि अंगिका भाषा साहित्य व कला को प्रोत्साहित करने तथा अंगिका प्रेमियों को एक मंच पर लाने में अंगिका महोत्सव 2019 का यह सबसे प्रगतिशील हो। तमाम अंगिका प्रेमियों का उत्साह देख कर बहुत ही आशान्वित हूँ। हमारा सामूहिक प्रयास अपनी अंगिका के उत्थान में सहायक होगा।

आज भारतीय संविधान की आठवीं सूची में असमियाँ, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तमिल, तेलगू, नेपाली, पंजाबी, बांग्ला, बोड़ो, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, मैथिली, संथाली, संस्‍ त, सिंधी और हिन्दी कुल 22 भाषाएँ शामिल हैं। अंगिका को भी इसमें शामिल करने की माँग भारत सरकार से इस महोत्सव के द्वारा करना भी हमारा उद्देश्य रहा। जबकि मंत्रालय में और 18 भाषाएँ आठवीं अनुसूचि में शामिल करने की कतार में हैं, जिनमें अंगिका पहले स्थान पर है। अंगिका भाषा आठवीं अनुसूची में शामिल होने की सभी अर्हताएँ भी पूरी करती हैं। यह हमारी मातृभाषा है जिसे हमारे बच्चे आसानी से बोल सकते हैं, पढ़ सकते हैं, लिख भी सकते हैं। देखा जाय तो भारत के ख्यातिप्राप्त अधिकतर वैज्ञानिकों ने भी अपनी शिक्षा मातृभाषा में ही प्राप्त की हैं, वह चाहे जगदीश चंद्र बसु हो, श्रीनिवास रामानुजम हों चाहे डॉ. अब्दुल कलाम, तो हमारे बच्चे अपनी अंगिका मातृभाषा पढ़कर कैसे ख्याति प्राप्त नहीं हो सकते। सरकार इसे बोर्ड की परीक्षा में शामिल करें ताकि हमारे बच्चे भी उच्च अंक प्राप्त करनेवालों की श्रेणी में शामिल हों तथा उसका विकास ठीक ढंग से हो पाए। शिक्षा के प्रति सरकारी महकमें की इस अरुचिता के कारण हमारे बच्चे शोधकार्य और साहित्यिक सृजन में वैश्विक स्तर पर पिछड़ रहे हैं। अतएव इस महोत्सव का उद्देश्य अपनी भाषा की वैज्ञानिकता एवं तार्किकता को प्रमाणित करना है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है– ''बच्चों के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है जितना शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध।''

हमें गर्व है कि हमारी भाषा अत्यंत प्राचीन समय से अस्तित्व में रही है। परन्तु इसके साथ हो रही उपेक्षा से मन व्यथित होता है। आज हम अपनी भाषा के लिए आयोजित इस महान उत्सव में यह संकल्प लें कि अपनी भाषा के प्रति निष्ठावान हो कर इसके उत्थान को तत्पर रहेंगे।

दयानन्द जायसवाल
संयोजक, अंगिका महोत्सव–2019

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303